श्रीयोगवाशिष्ठ चतुर्थ स्थिति प्रकरण

अनुक्रम

श्रीयोगवाशिष्ठ चतुर्थ स्थिति प्रकरण प्रारम्भ

जगत् निराकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अब स्थितिप्रकरण सुनिये जिसके सुनने से जगत् निर्वाणता को प्राप्त हो। कैसा जगत् है कि जिसके आदि अहन्ता है। ऐसा जो दृश्यरूप जगत् है सो भ्रान्तिमात्र है। जैसे आकाश में नाना प्रकार के रंगों सहित इन्द्रधनुष असत्‌रूप है तैसे ही यह जगत् है। जैसे दृर्टा बिना अनुभव होता है और निद्रा बिना स्वप्न और भविष्यत् नगर भासता है तैसे जगत् स्थित हुआ है। जैसे वानर रेत इक ी करके अग्नि की कल्पना हैं पर उससे शीत निवृत्त नहीं होती, भावनामात्र अग्नि होती है, तैसे ही यह जगत् भावनामात्र है। जैसे आकाश में रत्न मणि का प्रकाश और गन्धर्वनगर भासता है और जैसे मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसे ही यह असत्‌रूप जगत् भ्रम से सत्‌रूप हो भासता है। जैसे दृढ़ अनुभव से संकल्प भासता है पर वह असत्‌रूप है और जैसे कथा के अर्थ चित्त में भासते हैं तैसे ही निःसार रूप जगत् चित्त में साररूप हो भासता है। जैसे स्वप्न में पहाड़ और नदियाँ भास आती हैं, तैसे ही सब भूत बड़े भी भासते हैं पर आकाशवत् शून्यरूप हैं। स्वप्न में अंगना से प्रेम करना अर्थ से रहित और असत् रुप है सिद्ध नहीं होता तैसे ही यह भी प्रत्यक्ष भासता है परन्तु वास्तव में कुछ नहीं, अर्थ से रहित है जैसे चित्र की लिखी कमलिनी सुगन्ध से रहित होती है तैसे ही यह जगत् शून्यरूप है। जैसे आकाश में इन्द्रधनुष और केले का थम्भ सुन्दर भासता है परन्तु उस में कुछ सार नहीं निकलता तैसे ही यह जगत् देखने में रमणीय भासता है परन्तु अत्यन्त असत्‌रूप है, इसमें सार कुछ नहीं निकलता। देखने में प्रत्यक्ष अनुभव होता है परन्तु मृगतृष्णा की नदीवत् असत्‌रूप है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्!सर्व संशयों के नाशकर्ता! जब महाकल्प क्षय होता है तब दृश्यमान सब जगत् आत्मरूप बीज में लीन होता है। जैसे बीज में अंकुर रहता है, उससे उपजता है उसी में स्थित होता है और फिर उसी में लीन होता है। यह बुद्धि ज्ञान की है अथवा अज्ञान की? सर्व संशयों की निवृत्ति के अर्थ मुझसे स्पष्ट करके कहिये। वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार महाकल्प के क्षय होने पर बीजरूप आत्मा में जगत् स्थित होता है। जो ऐसा कहते हैं वह परम अज्ञानी और महामूर्ख बालक हैं जो ब्रह्म को जगत् का कारण बीज से अंकुर की नाईं कहते हैं वह मूर्ख हैं। बीज तो दृश्यरूप इन्द्रिय का विषय होता है। जैसे बटबीज से अंकुर होता है और फिर विस्तार पाता है सो इन्द्रियों का विषय है और जो मन सहित षट् इन्द्रियों से अतीत है, अर्थात् इन्द्रियों का विषय नहीं, आकाश से भी अधिक निर्मल है, उसको जगत् का बीज कैसे कहिये? जो आकाश से भी अधिक सूक्ष्म, परम उत्तम अनुभव से उपलब्ध और नित्य प्राप्त है उसको बीजभाव कहना नहीं बनता। हे रामजी! जोकि शान्त, सूक्ष्म, सदा प्रकाशसत्ता है और जिसमें दृश्य जगत् असत्‌रूप है उसको बीजरूप कैसे कहिये? और जब बीजरूप कहना नहीं बनता तब उसे जगत् कैसे कहिये? आकाश से भी अधिक सूक्ष्म निर्मल परमपद में सुमेरु, समुद्र, आकाश आदिक जगत् नहीं बनता। जो किञ्चन और अकिञ्चन है और निराकार, सूक्ष्म सत्ता है उसमें विद्यमान जगत् कैसे हो? वह महासूक्ष्मरूप है और दृश्य उससे विरुद्धरूप है जैसे धूप में छाया नहीं, जैसे सूर्य में अंधकार नहीं, जैसे अग्नि में बरफ नहीं, और जैसे अणु में सुमेरु नहीं होता, तैसे ही आत्मामें जगत् नहीं होता। सत्यरूप आत्मा में असत्यरूप जगत् कैसे हो? वट का बीज साकाररूप होता है और निराकाररूप आत्मा में साकाररूप जगत् होना अयुक्त है! हे रामजी! कारण दो प्रकार का होता है–एक समवाय कारण और दूसरा निमित्तकारण, आत्मा दोनों कारणों से रहित है। निमित्तकारण तब होता है जब कार्य

से कर्त्ता भिन्न हो, पर आत्मा तो अद्वैत है, उसके निकट दूसरी वस्तु नहीं, वह कर्त्ता कैसे हो और किसका हो, सहकारी भी नहीं जिससे कार्य करे, वह तो मन और इन्द्रियों से रहित निराकार अविकृतरूप है । और समवाय कारण भी परिणाम से होता है । जैसे वट बीज परिणाम से वृक्ष होता है, पर आत्मा तो अच्युतरूप है , परिणाम को कदाचित् नहीं प्राप्त होता तो समवाय कारण कैसे हो? जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, क्षियते, नश्यति, इनषट् विकारों से रहित निर्विकार आत्मा जगत् का कारण कैसे हो? इससे यह जगत् अकारणरूप भ्रान्ति से भासता है । जैसे आकाश में नीलता,सीप में रूपा और निद्रादोष से स्वप्न दृष्टि भासते हैं तैसे ही यह जगत् भ्रान्ति से भासता है । और जब स्वरूप में जागे तब जगत्भ्रम मिट जाता है । इससे कारणकार्य भ्रम को त्यागकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो । दुर्बोध से संकल्प रचना हुई है उसको त्याग करो और आदि, मध्य और अन्त से रहित जो सत्ता है उसी में स्थित हो तब जगत्भ्रम मिट जावेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगत् निराकरणन्नाम प्रथमस्सर्ग ॥१॥

अनुक्रम

स्मृतिबीजोपयास

वशिष्ठजी बोले, हे देवताओं में श्रेष्ठ, रामजी! बीज से अंकुरित् आत्मा से जगत् का होना अंगीकार कीजिये तो भी नहीं बनता, क्योंकि आत्मा सर्वकल्पनाओं से रहित महा चैतन्य और निर्मल अकाशवत् है, उसको जगत् का बीज कैसे मानिये? बीज के परिणाम में अंकुर होता है, और कारण समवायों से होता है, आत्मा में समवाय और निमित्त सहकारी कदाचित् नहीं बनते । जैसे बन्ध्या स्त्री की सन्तान किसी ने नहीं देखी तैसे ही आत्मा से जगत् नहीं होता । जो समवाय और निमित्तकारण बिना पदार्थ भासे तो जानिये कि यह है नहीं, भ्रान्तिमात्र भासता है । आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । और सृष्टि स्थिति, प्रलय से ब्रह्मसत्ता ही अपने आप में स्थित है । जो इस प्रकार स्थिति है तो कारण कार्य का क्रम कैसे हो और जो कारण कार्य भाव न हुआ तो पृथ्वी आदिक भूत कहाँ से उपजे? और जो कारण कार्य मानिये तो पूर्व जो विकार कहे हैं उनका दूषण आता है । उससे न कोई कारण है और न कार्य है, कारण कार्य बिना जो पदार्थ भासे उसको सत्‌रूप जाने । वह मूर्ख बालक और विवेक रहित है जो उसे कार्य कारण मानता है– इससे यह जगत् न आगे था, न अब है और न पीछे होगा– स्वच्छ चिदाकाशसत्ता अपने आप में स्थित है । जब जगत् का अत्यन्त अभाव होता है तब सम्पूर्ण ब्रह्म ही दृष्टि आता है । जैसे समुद्र में तरंग भासते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् भासता है–अन्यथा कारण कार्यभाव कोई नहीं और न प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव ही है । प्राग्भाव उसे कहते हैं कि जो प्रथम न हो, जैसे प्रथम पुत्र नहीं होता और पीछे उत्पन्न होता है । और जैसे मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है । प्रध्वंसाभाव वह है जो प्रथम होकर नष्ट हो जाता है, जैसे घट था और नष्ट हो गया । अन्योन्याभाव वह है, जैसे घट में पट का अभाव है और पट में घट का अभाव है । ये तीन प्रकार के अभाव जिसके हृदय में उसको जगत् दृढ़ होता है और उसको शान्ति नहीं होती । जब जगत् का अत्यन्ताभाव दीखता है तब चित्त शान्तिमान् होता है । जगत् के अत्यन्ताभाव के सिवाय और कोई उपाय नहीं और अशेष जगत् की निवृत्ति बिना मुक्ति नहीं होती सूर्य आदि लेकर जो कुछ प्रकाश पृथ्वी आदिक तत्त्व, क्षण, वर्ष, कल्प आदिक काल और मैं , यह रूप, अवलोक, मनस्कार इत्यादिक जगत् सब संकल्पमात्र है और कल्प, कल्पक, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र से कीट आदिपर्यन्त जो कुछ जगत् जाल है वह उपज उपजकर अन्तर्धान हो जाता है । महाचैतन्य परम आकाश में अनन्त वृत्ति उठती है जैसे जगत् के पूर्व शान्त सत्ता थी तैसे ही तुम अब भी जानो और कुछ नहीं हुआ । पर माणु के सहस्त्रांश की नाईं सूक्ष्म चित्तकला है, उस चित्तकला में अनन्त कोटि सृष्टियाँ स्थित हैं,वही चित्तसत्ता फुरने से जगत्‌रूप हो भासती है और प्रकाशरूप और निराकार शान्तरूप है, न उदय होता है, न अस्त होता है, न आता है और न जाता है । जैसे शिला में रेखा होती है तैसे आत्मा में जगत् है। जैसे आकाश में आकाशसत्ता फुरती है तैसे ही आत्मा में जगत् फुरता है और आत्मा ही में स्थित है । निराकार निर्विकार रूप विज्ञान घनसत्ता अपने आप में स्थित और उदय और अस्त से रहित, विस्तृतरूप है । हे रामजी! जो सहकारी कारण कोई न हुआ तो जगत् शून्य हुआ ऐसे जानने से सर्व कलंक कलना शान्त हो जाती है । हे रामजी! तुम दीर्घ निद्रा में सोये हो, उस निद्रा का अभाव करके ज्ञानभूमिका को प्राप्त हो जाओ । जागे से निःशोक पद प्राप्त होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्मृतिबीजोपयासोनाम द्वितीयस्सर्गः ॥२॥

अनुक्रम

जगदनन्तवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! महाप्रलय के अन्त और सृष्टि के आदि में जो प्रजापति होता है वह जगत् को पूर्व की स्मृति से उसी भाँति रचता है तो ये जगत् स्मृति रूप क्यों न होवे? वशिष्ठजी बोले कि हे रामजी! महाप्रलय के आदि में प्रजापति स्मरण करके पूर्व की नाईं जगत् रचता है जो ऐसे मानिये तो नहीं बनता, क्योंकि महाप्रलय में प्रजापति कहाँ रहता? जो आप ही न रहे उसकी स्मृति कैसे मानिये? जैसे आकाश में वृक्ष नहीं होता तैसे ही महाप्रलय में प्रजापति नहीं होता। फिर रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मण्य! जगत् के आदि में जो ब्रह्मा था उसने जगत् रचा, महाप्रलय में उसकी स्मृति का नाश तो नहीं होता, वह तो फिर स्मृति से जगत् रचता है आप कैसे कहते हैं कि नहीं बनता? वशिष्ठजी बोले, हे शुभव्रत, रामजी! महाप्रलय के पूर्व जो ब्रह्मादिक होते हैं वह महाप्रलय में सब निर्वाण हो जाते हैं अर्थात् विदेहमुक्त होते हैं। जो स्मृति करने वाले अन्तर्धान हो गये स्मृति कहाँ रही और जो स्मृति निर्मूल हुई तो उसको जगत् का कारण कैसे कहिये? महाप्रलय उसका नाम है जहाँ सर्व शब्द अर्थ सहित निर्मूल हो जाते हैं, जहाँ सब अन्तर्धान हो गये तहाँ स्मृति किसकी कहिए और जो स्मृति का अभाव हुआ तो कारण किसका किसकी नाईं कहिये? इससे सर्वजगत् चित्त के फुरने मात्र है। जब महा प्रलय होता है तब सब यत्न बिना ही मोक्षभागी होते हैं और जो आत्मज्ञान हो तो जगत् के होते भी मोक्षभागी होते हैं पर जो आत्मज्ञान नहीं होता तो जगत् दृढ़ होता है, निवृत्त नहीं होता। जब दृश्य जगत् का अभाव होता है तब स्वच्छ चैतन्य सत्ता जो आदि अन्त से रहित है प्रकाशती है और सब जगत् भी वही रूप भासता है सर्व में अनादि सिद्ध ब्रह्मतत्त्व प्रकाशित है, उसमें जो आदि संवेदन फुरता है वह ब्रह्मरूप है और अन्तवाहक देह विराट् जगत हो भासता है। उसका एक प्रमाणरूप यह तीनों जगत् है, उसमें देश, काल, क्रिया, द्रव्य, दिन, रात्रि क्रम हुआ है। उसके अणु में जो जगत् फुरते हैं सो क्या हैं? सब संकल्परूप है और ब्रह्मसत्ता का प्रकाश है। जो प्रबुद्ध आत्मज्ञानी है उसको सब जगत् एक ब्रह्मरूप ही भासता है और जो अज्ञानी है उसके चित्त में अनेक प्रकार जगत् की भावना होती है। द्वैत भावना से यह भ्रमता है। जैसे ब्रह्माण्ड के अनेक परमाणु होते हैं, उनके भीतर अनन्त सृष्टियाँ हैं और उनके अन्तर और अनन्त सृष्टि हैं तैसे ही और जो अनन्त सृष्टि हैं उनके अन्तर और अनन्त सृष्टियाँ फुरती हैं सो सब ब्रह्मतत्त्व का ही प्रकाश है। ब्रह्मरूपी महासुमेरु है, उसके भीतर अनेक जगत्रूपी परमाणु हैं सो सब अभिन्न रूप है। हे रामजी! सूर्य की किरणों के समूह में जो सूक्ष्म त्रसरेणु होते हैं उनकी संख्या कदाचित् कोई कर भी सके परन्तु आदि अन्त से रहित जो आत्मरूपी सूर्य है उसकी त्रिलोकी रूपी किरणों की संख्या कोई नहीं कर सकता। जैसे समुद्र में जल और पृथ्वी में धूलि के असंख्य परमाणु हैं तैसे ही आत्मा में असंख्य परमाणुरूप सृष्टियाँ हैं। जैसे आकाश शून्यरूप है तैसे ही आत्मा चिदाकाश जगत्रूप है, यह जो मैंने उसकी सृष्टि कही है जो इनको तुम जगत् शब्द से जानोगे तो अज्ञान बुद्धि है और दुःख और भ्रम देखोगे जो इनको ब्रह्मशब्द का अर्थ जानोगे तो इस बुद्धि से परमसार को प्राप्त होगे। सर्वविश्व ब्रह्म से फुरता है और विज्ञानघन ब्रह्मरूप ही है, द्वैत नहीं। जब जागोगे तब तुमको ऐसे ही भासेगा।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जगदनन्तवर्णनन्नाम तृतीयस्सर्गः ॥३॥

अनुक्रम

अंकुरवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इन्द्रियों का जीतना मोक्ष का कारण है और किसी क्रम तथा उपाय से संसारसमुद्र नहीं तरा जाता । सन्तों के संग और सत्‌शास्त्रों के विचार से जब आत्मतत्त्व का बोध होता है । जब तक संसार का अत्यन्त अभाव नहीं होता तब तक आत्मबोध नहीं होता । यह मैंने तुमसे क्रम कहा है सो संसारसमुद्र तरने का उपाय है । बहुत कहने से क्या है सब कर्मों का बीज मन है, मन में छेदे से ही सब जगत् का छेदन होता है । जब मनरूपी बीज नष्ट होता है तब जगत्‌रूपी अंकुर भी नष्ट हो जाता है । सब जगत् मन का रूप है, इसके अभाव का उपाय करो । मलीन मन से अनेक जन्म के समूह उत्पन्न होते हैं और इसके जीतने से सब लोकों में जय होती है । सब जगत् मन से हुआ है, मन के रहित हुए से देह भी नहीं भासती, जब मन से दृश्य का अभाव होता है तब मन भी मृतक हो जाता है, इसके सिवाय कोई उपाय नहीं । हे रामजी! मनरूपी पिशाच का नाश और किसी उपाय से नहीं होता । अनेक कल्प बीत गये और बीत जायँगे तब भी मन का नाश न होगा । इससे जब तक जगत् दृश्यमान है तब तक इसका उपाय करे । जगत् का अत्यन्त अभाव चिन्तना और स्वरूप आत्मा का अभ्यास करना यही परम औषध है । इस उपाय से मनरूपी दृष्टा नष्ट होता है जब तक मन नष्ट नहीं होता तब तक मन के मोह से जन्म मरण होता है और जब ईश्वर परमात्मा की प्रसन्नता होती है तब मन बन्धन से मुक्त होता है सम्पूर्ण जगत्, मन के फुरने से भासता है जैसै आकाश में शून्यता और गन्धर्व नगर भासते हैं तैसे ही संपूर्ण जगत् मन में भासता है । जैसे पुष्प में सुगन्ध, तिलों में तेल, गुणी में गुण और धर्मी में धर्म रहते हैं तैसे ही यह सत् असत्,स्थूल सूक्ष्म, कारण, कार्यरूपी जगत– मन में रहता है । जैसे समुद्र में तरंग आकाश में दूसरा चन्द्रमा और मरुस्थल में मृगतृष्णा का जल फुरता है तैसे ही चित्त में जगत् फुरता है । जैसे सूर्य में किरणें, तेज में प्रकाश और अग्नि में उष्णता है तैसे ही मन में जगत् है । जैसे बरफ में शीतलता, आकाश में शून्यता और पवन में स्पन्दता है तैसे ही मन में जगत् । सम्पूर्ण जगत् मनरूप है, मन जगत्‌रूप है और परस्पर एकरूप हैं, दोनों में से एक नष्ट हो तब दोनों नष्ट हो जाते हैं । जब जगत् नष्ट हो तब मन भी नष्ट हो जाता है । जैसे वृक्ष के नष्ट होने से पत्र, टास, फूल, फल नष्ट हो जाते हैं और इनके नष्ट होने से वृक्ष नष्ट नहीं होता ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे अंकुरवर्णनन्नाम चतुर्थस्सर्गः ॥४॥

अनुक्रम

भार्गवसंविद्रमन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप सर्वधर्मों के वेत्ता और पूर्व अपर के ज्ञाता हैं, मन के फुरने से जगत् कैसे होता है और कैसे हुआ है? दृष्टान्त सहित मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे इन्द्र ब्राह्मण के पुत्रों की दश सृष्टि हुईं और दश ही ब्रह्मा हुए सो मन के फुरने से ही उपजकर मन के फुरने में स्थित हुए और जैसे लवण राजा को इन्द्रजाल की माया से चाण्डाल की प्रतिमा दृढ़ होकर भासी तैसे ही यह जगत् मन में स्थित हुआ है । जैसे मन के फुरने से चिरकाल स्वर्ग को भोगते रहे और अनेक भ्रम देखे, तैसे ही यह जगत् मन के भ्रम से स्थित हुआ है । रामजी ने पूछा हे भग वन्! भृगु ऋषीश्वर के पुत्र ने मन के भ्रम से कैसे स्वर्गसुख भोगे, यह कैसे भोग का अधिपति हुआ है और कैसे संसार भ्रम देखा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! भृगु के पुत्र का वृत्तान्त सुनो । भृगु और काल का संवाद मंदराचल पर्वतमें हुआ है । एक समय भृगु मन्दराचल पर्वत में जहाँ कल्पवृक्ष और मन्दार आदिक वृक्ष, बहुत सुन्दर स्थान और दिव्यमूर्ति हैं तप करते थे और शुक्रजी उनकी टहल करते थे । जब भृगुजी निर्विकल्प समाधि में स्थित हुए तब निर्मल मूर्ति शुक्र एकान्त जा बैठे । वे कण्ठ में मन्दार और कल्पवृक्षों के फूलों की माला पहिरे हुए विद्या और अविद्या के मध्य में स्थित थे जैसे त्रिशंकु राजा चाण्डाल था, पर विश्वामित्र के वर को पाके जब स्वर्ग में गया तब देवताओं ने अनादर कर उसे स्वर्ग से गिरा दिया और विश्वामित्र ने देखके कहा कि वहीं खड़ा रह इससे वह भूमि और आकाश के मध्य में स्थित रहा, तैसे ही शुक्र बैठे तो क्या देखा कि एक महासुन्दर अप्सरा उसके ऊर्ध्व स्वर्ग की ओर चली जाती है । जैसे लक्ष्मी की ओर विष्णुजी देखें तैसे ही अप्सरा को शुक्र ने देखा कि महासुन्दरी और अनेक प्रकार के भूषण और वस्त्र पहिने हुए महासुगन्धित है और महासुन्दर आकाशमार्ग भी उससे सुगन्धित हुआ है । पवन भी उसकी स्पर्श करके सुगन्ध पसारती है और महामद से उसके पूर्ण नेत्र हैं । ऐसी अप्सरा को देखके शुक्र का मन क्षोभायमान हुआ और जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा को देखके क्षीरसमुद्र क्षोभित होता है तैसे ही उसकी वृत्ति अप्सरा में जा स्थित हुई और कामदेव का वाण आ लगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंविद्रमनन्नाम पञ्चमस्सर्गः ॥५॥

अनुक्रम

भार्गवमनोराजवर्णन

वशिष्ठ जी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसने अप्सरा को देखके नेत्र मूँदे और मनोराज को फैलाकर चिन्तने लगा कि यह मृगनयनी ललना जो स्वर्ग को गई है मैं भी उसके निकट पहुँचू । ऐसे विचार के वह उसके पीछे चला और जाते जाते मन से स्वर्ग में पहुँचा । वहाँ सुगन्ध सहित मन्दार और कल्पतरु, द्रव स्वर्ण की नाईं देवताओं के शरीर और हास विलास संयुक्त स्त्रियाँ जिनके हरिण की नाईं नेत्र हैं देखे । मणियों के समूह की परस्पर उनमें प्रतिबिम्ब पड़ते हैं और विश्वरूप की उपमा स्वर्ग लोक में देखी । मन्द मन्द पवन चलती है, मन्दार वृक्षों में मञ्जरी प्रफुल्लित हैं और अप्सरागण विचरती हैं । इन्द्र के सम्मुख गया तो देखा कि ऐरावत हस्ती जिसने युद्ध में दाँतों से दैत्य चूर्ण किये हैं बड़े मद सहित खड़ा है, देवताओं के आगे अप्सरा गान करती हैं, सुवर्ण के कमल लगे हुए हैं । ब्रह्मा के हंस और सारस पक्षी विचरते हैं और देवताओं के नायक विश्राम करते हैं, फिर लोकपाल, यम, चन्द्रमा, सूर्य, इन्द्र, वायु और अग्नि के स्थान देखे जिनका महाज्वालवत् प्रकाश है । ऐरावत् के दाँतों में दैत्यों की पंक्ति देखी, देवता देखे जो विमानों पर आरूढ़ भूषण पहिने हुए फिरते हैं और उनके हार मणियों से जड़े हुए हैं । कहीं सुन्दर विमानों की पंक्ति विचरती हैं, कहीं मन्दार वृक्ष हैं, कहीं कल्पवृक्ष हैं, उनमें सुन्दर लता हैं, कहीं गंगा का प्रवाह चलता है, उस पर अप्सरागण बैठी हैं, कहीं सुगन्धता सहित पवन चलता है, कहीं झरने में से जल चलता है, कहीं सुन्दर नन्दन वन हैं, कहीं अप्सरा बैठी हैं, कहीं नारद आदिक बैठे हैं और कहीं जिन लोगों ने पुण्य किये हैं वे बैठे सुख भोगते हैं और विमानों पर आरूढ़ हुए फिरते हैं । कहीं इन्द्र की अप्सरा कामदेव से मस्त हैं और जैसे कल्पवृक्ष में पक्के फल लगते हैं तैसे ही रत्न और चिन्तामणि लगे हैं, और कहीं चन्द्रकान्तिमणि स्रवती है । इस प्रकार शुक्र ने मन से स्वर्ग की रचना देखा, मानों त्रिलोक की रचना यही है । शुक्र को देखके इन्द्र खड़ा हुआ कि दूसरा भृगु आया है और बड़े प्रकाश संयुक्त शुक्र की मूर्ति को प्रणाम किया और हाथ पकड़ के अपने पास बैठा के बोला, हे शुक्रजी! आज हमारे धन्य भाग है जो तुम आये । आज हमारा स्वर्ग तुम्हारे आने से सफल, शोभित और निर्मल हुआ है । अब तुम चिरपर्यन्त यहीं रहो । जब ऐसे इन्द्र ने कहा तब शुक्रजी शोभित हुए और उसको देखके सुरों के समूह ने प्रणाम किया कि भृगु के पुत्र शुक्रजी आये हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरण भार्गवमनोराजवर्णनन्नाम षष्ठस्सर्गः ॥६॥

अनुक्रम

भार्गवसंगमोनाम

वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब इस प्रकार शुक्रजी इन्द्र के पास जा बैठे तब अपना जो निज भाव था उसको भुला दिया। वह जो मन्दराचल पर्वत पर अपना शरीर था सो भूल गया और वासना से मनोराज का शरीर दृढ़ हो गया। एक मुहूर्त्त पर्यन्त इन्द्र के पास बैठै रहे परन्तु चित्त उस अप्सरा में रहा। इसके अनन्तर उठ खड़े हुए और स्वर्ग को देखने लगे तब देवताओं ने कहा कि चलो स्वर्ग की रचना देखो। तब शुक्रजी देखते–देखते जहाँ वह अप्सरा थी वहाँ गये। बहुत–सी अप्सराओं में वह बैठी थी, उसको शुक्रजी ने इस भाँति देखा जैसे चन्द्रमा चाँदनी को देखे। उसे देखके शुक्र का शरीर द्रवीभूत होकर प्रस्वेद से पूर्ण हुआ जैसे चन्द्रमा को देखके चन्द्रकान्तिमणि द्रवीभूत होती है, और कामदेव के बाण उसके हृदय में आ लगे उससे व्याकुल हो गया। शुक्र को देख के उसका चित् भी मोहित हो गया–जैसे वर्षाकाल की नदी जल से पूर्ण होती है तैसे ही परस्पर स्नेह बढ़ा। तब शुक्रजी ने मन से तम रचा उससे सब स्थानों में तम हो गया जैसे लोकालोक पर्वत के तम होता है तैसे ही सूर्य का अभाव हो गया। तब भूतजात सब अपने अपने स्थानों में गये जैसे दिन के अभाव हुए पशु–पक्षी अपने अपने गृह को जाते हैं और वह अप्सरा शुक्र के निकट आई। शुक्रजी श्वेत आसन पर बैठ गये और अप्सरा भी जो सुन्दर वस्त्र और भूषण पहिने हुए थी चरणों के निकट बैठी और स्नेह से दोनों कामवश हुए। तब अप्सरा ने मधुर वाणी से कहा, हे नाथ! मैं निर्बल होकर तुम्हारे शरण आई हूँ मुझको कामदेव दहन करता है, तुम रक्षा करो, मैं इससे पूर्ण हो गई हूँ। स्नेहरूपी रस को वही जानता है जिसको प्राप्त हुआ है, जिसको रस का स्वाद नहीं आया वह क्या जाने। हे साधो! ऐसा सुख त्रिलोकी में और कुछ नहीं जैसा सुख परस्पर स्नेह से होता है।अब तुम्हारे चरणों को पाके मैं आनन्दवान् हुई हूँ और जैसे चन्द्रमा को पाके कमलिनी और चन्द्रमा की किरणों को पाके चकोर आनन्दवान् होते हैं तैसे ही मुझको स्पर्श करके आप आनन्द होंगे। जब इस प्रकार अप्सरा ने कह तब दोनों काम के वश होकर क्रीड़ा करने लगे।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवसंगमोनामसप्तमस्सर्गः ॥७॥

अनुक्रम

भार्गवोपाख्याने बिविधजन्म वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार उसको पाके शुक्र ने आपको आनन्दवान् मान, मन्दार और कल्पवृक्ष के नीचे क्रीड़ा की और दिव्य–वस्त्र, भूषण और फूलों की माला पहिनकर वन, बगीचे और किनारों में क्रीड़ा करते और चन्द्रमा की किरणों के मार्ग से अमृत पान करते रहे । फिर विद्याधरों के गणों के साथ रह उनके स्थानों और नन्दनवन इत्यादि में क्रीड़ा करते कैलाश पर्वत पर गये और अप्सरा सहित वन कुञ्ज में फिरते रहे । फिर लोकालोक पर्वत पर क्रीड़ा की फिर मन्दराचल पर्वत के कुञ्च में विचर अर्ध शत युगपर्यन्त श्वेतद्वीप में रहे । फिर गन्धर्वों के नगरों में रहे और फिर इन्द्र के वन में रहे । इसी प्रकार बत्तीस युग पर्यन्त स्वर्ग में रहे, जब पुण्य क्षीण हुआ तब भूमि–लोक में गिरा दिये गये और गिरते–गिरते उनका शरीर टूट गया । जैसे झरने में से जल बन्द हो तैसे ही शरीर अन्तर्धान हो गया । तब उसकी चिन्तासंयुक्त पुर्यष्टक आकाश में निराधार हो रही और वासनारूपी दोनों चन्द्रमा की किरणों में जा स्थित हुए । फिर शुक्र ने तो किरणों द्वारा धान्य में आ निवास किया और उस धान्य को दशारण्य नाम ब्राह्मण ने भोजन किया तो वीर्य होकर ब्राह्मणी के गर्भ में जा रहा और उस धान्य को मालव देश के राजा ने भी भोजन किया उसके वीर्यद्वारा वह अप्सरा उसकी स्त्री के उदर में जा स्थित हुई । निदान दशारण्य ब्राह्मण के गृह में शुक्र पुत्र हुआ और मालवदेश के राजा के यहाँ अप्सरा पुत्री हुई । क्रम से जब षोडश वर्ष की हुई तो महादेव की पूजा कर यह प्रार्थना की कि हे देव! मुझको पूर्व के भर्त्ता की प्राप्ति हो इस प्रकार वह नित्य पूजन करे और वर माँगे । निदान वहाँ वह यौवनवान् हुआ यहाँ यह यौवनवती हुई । तब राजा ने यज्ञ को प्रारम्भ किया और उसमें सब राजा और ब्राह्मण आये । दशारण्य ब्राह्मण भी पुत्रसहित वहाँ आया तब उस पूर्वजन्म के भर्त्ता को देखकर स्नेह से राजपुत्री के नेत्रों से जल चलने लगा और उसके कण्ठ में फूल की माला डालके उसे अपना भर्त्ता किया । राजा यह देखके आश्चर्यमान हुआ और निश्चय किया कि भला हुआ । फिर क्रम से विवाह किया और पुत्री और जामातृ को राज्य देके आप वन में तप करने के लिए चला गया । यहाँ ये पुरुष और स्त्री मालवदेश का राज्य करने लगे और चिरकाल तक राज्य करते रहे । निदान दोनों वृद्ध हुए और उनका शरीर जर्जरीभूत हो गया । तब उसको वैराग्य हुआ कि स्त्री महादुःखरूप है पर उसे सामान्य वैराग्य हुआ था इससे जर्जरीभूत अंग में सेवने से तो अशक्त हुआ परन्तु तृष्णा निवृत्त न हुई । निदान मृतक हुआ और बान्धवों ने जला दिया तब ज्ञान की प्राप्ति बिना महाअन्धकूप मोह में जा पड़े । हे रामजी! मृत्यु–मूर्च्छा के अनन्तर उसको परलोक भासि आया और वहाँ कर्म के अनुसार सुख दुःख भोग के अंग वंग देश में धीवर हुआ और अपने धीवरकर्म करता रहा । फिर जब वृद्ध अवस्था आई तब शरीर में वैराग्य हुआ कि यह संसार महादुःखरूप है ऐसे जानके सूर्य भगवान् का तप करने लगा और जब मृतक हुआ तब तप के वश से सूर्यवंश में राजा होकर भावना के वश से कुछ ज्ञानवान् हुआ । इस जन्म में वह योग करने और वेद पढ़ने लगा और योग की भावना से जब शरीर छूटा तब बड़ा गुरू हुआ और सबको उपदेश करने लगा, मन्त्र सिद्ध किया और वेद में बहुत परिपक्व हुआ । मन्त्र के वश से वह विद्याधर हुआ और एक कल्प पर्यन्त विद्याधर रहा । जब कल्प का अन्त हुआ तब शरीर अन्तर्धान हो गया और पवनरूपी वासना सहित हो रहा । जब ब्रह्मा की रात्रि क्षय हुई, दिन हुआ और ब्रह्मा ने सृष्टि रची तब वह एक मुनीश्वर के गृह में पुत्र हुआ और वहाँ उसने बड़ा तप किया । वह सुमेरु पर्वत पर जाकर स्थित हुआ और एक मन्वन्तर पर्यन्त वहाँ रहा । जब इकहत्तर चौयुगी बीती तब वह भोगों के वश हरिणी का पुत्र हुआ और मनुष्य के आकार से वहाँ रहा और पुत्र के स्नेह से मोह को प्राप्त हो निरन्तर यही चिन्तना करने लगा कि मेरे पुत्र को बहुत धन, गुण, आयु,

बल हो, इस कारण तप के भ्रष्ट होने से अपने धर्म से विरक्त हुआ, आयुष्य क्षीण हुई और मृत्युरूप सर्प ने ग्रस तप की अभिलाषा से शरीर छूटा इस कारण भोग की चिन्ता संयुक्त मद्रदेश के राजा के गृह में उत्पन्न हुआ, फिर उस देश का राजा हुआ और चिरपर्यन्त राज्य भोग के वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ और शरीर जर्जरीभूत हो गया । वहाँ तप के अभिलाषा में उसका शरीर छूटा उससे तपेश्वर के गृह में पुत्र हुआ और सन्ताप से रहित होकर गंगाजी के किनारे पर तप करने लगा । हे रामजी । इस प्रकार मन के फुरने से शुक्र ने अनेक शरीर भोगे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्याने बिविधजन्म वर्णनन्नाम अष्टमस्सर्गः ॥८॥

अनुक्रम

भार्गवकलेवरवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार शुक्र मन से भ्रमता फिरा । भृगु के पास जो उसका शरीर पड़ा था सो निर्जीव हुआ पुर्यष्टक निकल गई थी और पवन और धूप से शरीर जर्जरीभूत हो गया जैसे मूल से काटा वृक्ष गिर पड़ता है, तैसे ही शरीर गिर पड़ा चञ्चल मन भोग की तृष्णा से वहाँ गया था । जैसे हरिण वन में भ्रमता है और चक्र पर चढ़ा वासन भ्रमता है तैसे ही उसने भ्रम से भ्रमान्तर देखा, पर जब मुनीश्वर के गृह में जन्म लिया तब चित्त में विश्राम हुआ और गंगा के तट पर तप करने लगा । निदान मन्दराचल पर्वतवाला शुक्र का शरीर नीरस हो गया शरीर चर्ममात्र शेष रह गया और लोहू सूख गया । जब शरीर के रन्ध्र मार्ग से पवन चले तब बाँसुरीवत् शब्द हो, मानो चेष्टा को त्याग के आनन्दवान् हुआ है । जब बड़ा पवन चले तब भूमि में लोटने लगे, नेत्र आदिक जो रन्ध्र थे सो गर्तवत् हो गये और मुख फैल गया–मानो अपने पूर्व स्वभाव को देख के हँसता है, जब वर्षाकाल आवे तब वह शरीर जल से पूर्ण हो जावे और जल उसमें प्रवेश करके रन्ध्रों के मार्ग से ऐसे निकले जैसे झरने से निकलता है और जब उष्णकाल आवे तब महाकाष्ठ की नाईं धूप से सूख जावे । निदान वह शरीर वन में मौनरूप होकर स्थित रहा । और पशु–पक्षियों ने भी उस शरीर को नष्ट न किया । उसका एक तो यह कारण था कि राग–द्वैष से रहित पुण्य आश्रम था–और दूसरे भृगुजी महातपस्वी तेजवान् के निकट कोई आ न सकता था । तीसरे उनके संस्कार शेष थे । इस कारण उस देह को कोई नष्ट न कर सका । यहाँ तो शरीर की यह दशा हुई और वहाँ शुक्र पवन के शरीर से चेष्टा करता रहा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे भार्गवकलेवरवर्णनन्नाम नवमस्सर्गः ॥९॥

अनुक्रम

कालवाक्य

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब सहस्त्र वर्ष अर्थात् भूमिलोक के तीनलाख साठ सहस्त्र वर्ष बीते तब भगवान् भृगुजी समाधि से उतरे तो उन्हें शुक्र दृष्टि न आया । जब भले प्रकार नेत्र फैलाकर देखा तब मालूम हुआ कि उसका शरीर कृश हो के गिर पड़ा है । यह दशा देख उन्होंने जाना कि काल ने इसको भक्षण किया है और धूप वायु और मेघ से शरीर जर्जरीभूत हो गया है, नेत्र गढ़ेरूप हो गये हैं, शरीर में कीड़े पड़ गये हैं और जीवों ने उसमें आलय बनाये हैं । घुराण अर्थात् कुसवारी और मक्खियाँ उसमें आती–जाती हैं, श्वेत दाँत निकल आये हैं–मानों शरीर की दशा को देखके हँसते हैं और मुख और ग्रीवा महाभयानकरूप, खपर श्वेत और नासिका और श्रवण स्थान सब जर्जरीभूत हो गये हैं । उस शरीर की यह दशा देख के भृगुजी उठ खड़े हुए और क्रोधवान् होकर कहने लगे कि काल ने क्या समझा जो मेरे पुत्र को मारा । शुक्र परम तपस्वी और सृष्टिपर्यन्त रहने वाला था सो बिना काल, काल ने मेरे पुत्र को क्यों मारा, यह कौन रीति है?मैं काल को शाप देकर भस्म करूँगा । तब महाकाल का रूप काल अद्भुत शरीर धरकर आया । उसके षटमुख, षटभुजा, हाथ में खंग, त्रिशूल और फाँसी और कानों में मोती पहिने हुए, मुख से ज्वाला निकलती थी, महाश्याम शरीर अग्निवत् जिह्वा और त्रिशूल के अग्निकी लपटें निकलती थीं । जैसे प्रलयकाल की अग्नि से धूम निकलता है तैसे ही उसका श्याम शरीर और बड़े पहाड़ की नाईं उग्ररूप था और जहाँ वह चरण रखता था वहाँ पृथ्वी और पहाड़ काँपने लगते थे । निदान भृगुजी महाप्रलय के समुद्रवत् क्रोध पूर्ण थे, उनसे कहने लगा,हे मुनीश्वर! जो मर्यादा और परावर परमात्मा के वेत्ता हैं वे क्रोध नहीं करते और जो कोई क्रोध करे तो भी वे मोह के वश होकर क्रोधवान् नहीं होते । तुम कारण बिना क्यों मोहित होकर क्रोध को प्राप्त हुए हो? तुम ब्रह्मतनय तपस्वी हो और हम नीति के पालक हैं। तुम हमारे पूजने योग्य हो– यही योग्य हो–यही नीति की इच्छा है और तप के बल से तुम क्षोभ मत करो, तुम्हारे शाप से मैं भस्म भी नहीं होता । प्रलयकाल की अग्नि भी मुझको दग्ध नहीं कर सकती तो तुम्हारे शाप से मैं कब भस्म हो सकता हूँ । हे मुनीश्वर! मैं तो अनेक ब्रह्मण्ड भक्षण कर गया हूँ, और कई कोटि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र मैंने ग्रास लिये हैं, तुम्हारा शाप मुझको क्या कर सकता है? जैसे आदि नीति ईश्वर ने रची है तैसे ही स्थित है । हम सबके भोक्ता हुए हैं और तुमसे ऋषि हमारे भोग हुए हैं, यही आदि नीति है । हे मुनीश्वर! अग्नि स्वभाव से ऊर्ध्व को जाता है और जल स्वभाव से अधः को जाता है, भोक्ता को भोग प्राप्त होता और सब सृष्टि काल के मुख में प्राप्त होती है । आदि परमात्मा की नीति ऐसे ही हुई है और जैसे रची है तैसे ही स्थिति है पर जो निष्कलंक ज्ञानदृष्टि से देखिये तो न कोई कर्त्ता है,न भोक्ता है,न कारण है, न कार्य है, एक अद्वैतसत्ता ही है और जो अज्ञान कलंकदृष्टि से देखिये तो कर्ता भोक्ता अनेक प्रकार भ्रम भासते हैं, हे ब्राह्मण! कर्त्ता भोक्ता आदिक भ्रम असम्यक् ज्ञान से होता है, जब सम्यक् ज्ञान होता है तब कर्त्ता, कार्य और भोक्ता कोई नहीं रहता । जैसे वृक्ष में पुष्प स्वभाव से उपज आते हैं और स्वभाव से ही नष्ट हो जाते हैं तैसे ही भूत प्राणी सृष्टि में स्वाभाविक फुर आते हैं और फिर स्वाभाविक रीति से ही नष्ट हो जाते हैं । ब्रह्मा उत्पन्न करता है और नष्ट भी करता है । जैसे चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल के हिलने से हिलता भासता है और ठहरने से ठहरा भासता है तैसे ही मन के फुरने से आत्मा में कर्त्तव्य भोक्तव्य भासता है वास्तव में कुछ नहीं, सब मिथ्या है । जैसे रस्सी में सर्प भ्रम से भासता है तैसे ही आत्मा में कर्त्तव्य भोक्तव्य भ्रम से भासता है । इससे क्रोध मत करो, यह दुष्टकर्म आपदा का कारण है । हे मुनीश्वर! मैं तुमको यह वचन अपनी विभूति और अभिमान से नहीं कहता । यह स्वतः ईश्वर की नीति है और हम उसमें स्थित हैं । जो बोधवान् पुरुष हैं वे अपने

प्रकृत आचार में विचरते हैं और अभिमान नहीं करते । जो कर्त्तव्य के वेत्ता हैं वे बाहर से प्रकृत आचार करते हैं और हृदय से सुषुप्ति की नाईं स्थित रहते हैं । वह ज्ञानदृष्टि धैर्य और उदार दृष्टि कहाँ गई जो शास्त्र में प्रसिद्ध है? तुम क्यों अन्धे की नाई स्थित रहते हैं । वह ज्ञान दृष्टि, धैर्य और उदार दृष्टि कहाँ गई जो शास्त्र में प्रसिद्ध है? तुम क्यों अन्धे की नाईं मोहमार्ग में मोहित होते हो? हे साधो! तुम तो त्रिकालदर्शी हो, अविचार से मूर्ख की नाईं जगत् में क्यों मोह को प्राप्त होते हो? तुम्हारा पुत्र अपने कर्मों के फल को प्राप्त हुआ है और तुम मूर्ख की नाईं मुझको शाप दिया चाहते हो । हे मुनीश्वर! इस लोक में सब जीवों के दो–दो शरीर हैं– एक मनरूप और दूसरा आधिभौतिक । आधिभौतिक शरीर अत्यन्त विनाशी है और जहाँ इसको मन प्रेरता है वहाँ चला जाता है–आपसे कुछ कर नहीं सकता । जैसे सारथी भला होता है तो रथ को भले स्थान को ले जाता है और जो सारथी भला नहीं होता तो रथ को दुःख के स्थान में ले जाता है तैसे ही यदि जो मन भला होता है तो उत्तम लोक में जाता है जो दुष्ट होता है तो नीच स्थान में जाता है । जिसको मन असत् करता है सो असत् भासता है और जिसको मन सत् करता है वह सत् भासता है । जैसे मि ी की सेना बालक बनाते और फिर भंग करते हैं, कभी सत् करते, कभी असत् करते हैं और जैसे करते हैं तैसे ही देखते हैं, तैसे ही मन की कल्पना है । हे साधो! चित्तरूपी पुरुष है, जो चित्त करता है वह होता है और जो चित्त नहीं करता वह नहीं होता । यह जो फुरना है कि यह देह है, ये नेत्र हैं; ये अंग हैं इत्यादिक सब मनरूप हैं । जीव भी मन का नाम है और मन का जीना जीव है । वही मन की वृत्ति जब निश्चयरूप होती है तब उसका नाम बुद्धि होता है, जब अहंरूप धारती है तब उसका नाम अहंकार होता है और जब देह को स्मरण करती है तब उसका नाम चित्त होता है । इससे पृथ्वी रूपी शरीर कोई नहीं, मन ही दृढ़ भावना से शरीररूप होता है और वही आधिभौतिक हो भासता है और जब शरीर की भावना को त्यागता है तब चित्तपरमपद को प्राप्त होता है । जो कुछ जगत है वह मन के फुरने में स्थित है, जैसा मन फुरता है तैसा ही रूप हो भासता है । तुम्हारे पुत्र शुक्र ने भी मन के फुरने से अनेक स्थान देखे हैं । जब तुम समाधि में स्थित थे तब वह विश्वाची अप्सरा के पीछे मन से चला गया और स्वर्ग में जा पहुँचा ।फिर देवता होकर मन्दारवृक्षों में अप्सरा के साथ विचरने लगा और फिर पारिजात तमाल वृक्ष और नन्दन वन में विचरता रहा । इसी प्रकार बत्तीस युग पर्यन्त विश्वाची अप्सरा के साथ लोकपालों के स्थान इत्यादिक में विचरता रहा और जैसे भँवरा कमल को सेवता है तैसे ही तीव्र संवेग से भोग भोगता रहा । जब पुण्य क्षीण हुआ तब वहाँ से इस भाँति गिरा जैसे पक्का फल वृक्ष से गिरता है । तब देवता का शरीर आकाशमार्ग में अन्तर्धान हो गया और भूमिलोक में आ पड़ा । फिर धान में आकर ब्राह्मण के वीर्य द्वारा ब्राह्मणी का पुत्र हुआ, फिर मालवदेश का राज्य किया और फिर धीवर का जन्म पाया । फिर सूर्यवंशी राजा हुआ, फिर विद्याधर हुआ और कल्प पर्यन्त विद्याधरों में विद्यमान रहा और फिर विन्ध्याचल पर्वत में लय होकर क्रान्त देश में धीवर हुआ । फिर तरंगीत देश में राजा हुआ,फिर क्रान्तदेश में हरिण हुआ और वनमें विचरा और फिर विद्यामान् गुरु हुआ । निदान श्रीमान् विद्याधर हुआ और कुण्डलादि भूषणों से सम्पन्न बड़ा ऐश्वर्यवान् गन्धर्वों का मुनिनायक हुआ और कल्प पर्यन्त वहाँ रहा । जब प्रलय होने लगी तब पूर्व के सब लोक भस्म हो गये–जैसे अग्नि में पतंग भस्म होते हैं–तब तुम्हारा पुत्र निराधार और निराकार वासना से आकाशमार्ग में भ्रमता रहा । जैसे आलय बिना पक्षी रहता है तैसे ही वह रहा और जब ब्रह्मा की रात्रि व्यतीत हुई और सृष्टि की रचना बनी तब वह सतयुग में ब्राह्मण का बालक वसुदेवनाम हो गंगा के तट पर तप करने लगा ।अब उसे आठसौ वर्ष तप करते बीते हैं, जो तुम भी ज्ञानदृष्टि से देखोगे तो सब वृत्तान्त तुमको भास आवेगा । इससे देखो कि इसी प्रकार है अथवा किसी और प्रकार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कालवाक्यन्नामदशमस्सर्गः ॥१०॥

अनुक्रम

संसारावर्तवर्णन

काल बोले, हे मुनीश्वर? ऐसी गंगा के तट पर जिसमें महातरंग उछलते और झनकार शब्द होते हैं तुम्हारा पुत्र तप करता है । शिर पर उसके बड़ी जटा हैं और सर्व इन्द्रियों को उसने जीत लिया है । जो तुमको उसके मन के विस्तार देखने की इच्छा है तो इन नेत्रों को मूँदकर ज्ञान के नेत्रों से देखो । हे रामजी! जब इस प्रकार जगत के ईश्वर काल ने, जिसकी समदृष्टि है, कहा, तब मुनीश्वर ने नेत्रों को मूँदकर, जैसे कोई अपनी बुद्धि में प्रतिबिम्ब देखे । ज्ञाननेत्रों से एक मुहूर्त्त में अपने पुत्र का सब वृत्तान्त देखा और फिर मन्दराचल पर्वत पर जो भृगुशरीर पड़ा था उसमें प्रवेशकर अन्तवाहक शरीर से अपने अग्रभाग में काल भगवान् को देखकर पुत्र को गंगा के तट पर देखा । यह दशा देख वह आश्चर्य को प्राप्त हुआ और विकारदृष्टि को त्यागकर निर्मलभाव से वचन कहे । हे भगवन्! तीनों काल के ज्ञाता ईश्वर! हम बालक हैं , इसी से निर्दोष हैं । तुम सरीखे बुद्धिमान् और तीन काल अमलदर्शी हैं । हे भगवन्! ईश्वर की माया महाआश्चर्यरूप है जो जीवों को अनेक भ्रम दिखाती है और बुद्धिमान् को भी मोह करती है तो मूर्खों की क्या बात है? तुम सब कुछ जानते हो, जीवों की सब वार्त्ता तुम्हारे अन्तर्गत है । जैसी जीवों के मन की वृत्ति होती है उसके अनुसार वे भ्रमते हैं । वह मन की सब तुम्हारे अन्तर्गत फुरती है । जैसे इन्द्रजाली अपनी बाजी का वेत्ता होता है तैसे ही तुम इन सबों के वेत्ता हो । हे भगवन्! मैंने भ्रम को प्राप्त होकर क्रोध इस कारण से किया कि मेरे पुत्र की मृत्यु न थी वह चिरञ्जीवी था और उसको मैं मृतक हुआ देखके भ्रम को प्राप्त हुआ । हमारा क्रोध आपदा का कारण नहीं था , क्योंकि जब मैंने पुत्र का शरीर निर्जीव देखा तब कहा कि अकारण मृतक हुआ इस कारण क्रोध हुआ । क्रोध भी नीतिरूप है अर्थात् जो क्रोध का स्थान हो वहाँ क्रोध चाहिए । मैंने विचार के क्रोध नहीं किया है अर्थात् पुत्र की अवस्था देख के क्रोध किया,निर्जीव शरीर को देखके क्रोध किया, इसी से यह क्रोध आपदा का कारण नहीं । अयुक्ति कारण से जो क्रोध होता वह आपदा का कारण है और युक्ति से जो क्रोध है वह सम्पदा का कारण है यह कर्त्तव्य संसार की सत्ता में स्थित है । यह नीति है कि जब तक जीव है तबतक जगत् क्रम है जैसे जब तक अग्नि है तब तक उष्णता भी है । जो कर्तव्य है वह करना है और जो त्यागने योग्य है वह त्यागना है । यह नीति जगत् में स्थित है । जो हेयोपादेय नहीं जानता उसको त्यागना योग्य है । इससे मैंने पुत्र की अकालमृत्यु देखके क्रोध किया था परन्तु विचार करके जब तुमने स्मरण कराया तब मैंने विचार करके देखा कि मेरा पुत्र अनेक भ्रम पाकर अब गंगा के तट पर तप करता है । हे भगवन्! तुमने तो कहा कि सब जीवों के दो-दो शरीर हैं-एक मनोमय और दूसरा आधिभौतिक, पर मैं तो यह मानता हूँ कि केवल मन ही एक शरीर है, दूसरा कोई नहीं । मनही का किया सफल होता है, शरीर का नहीं होता । काल बोले, हे मुनीश्वर! तुमने यथार्थ कहा, शरीर एक मन ही है । जैसे घट को कुलाल रचता है, तैसे ही मन भी देह को रचता है ।जो मन शरीर से रहित निराकार होता है तो क्षण में आकार को रच लेता है । जैसे बालक परछाहीं में वैताल को भ्रम से रचता है। मन में जो फुरनसत्ता है वह स्वप्न भ्रम दिखाती है और उसमें बड़े आकार और गन्धर्व नगर भासि आते हैं पर वह मन ही की सत्ता है । स्थूल दृष्टि से जीवों को दो शरीर भासते हैं बोधवान् को तीनों जगत् मन रूप भासते हैं और सब मन से रचे हैं । जब भेदवासना होती हे तब असत्‌रूप जगत् नाना प्रकार हो भासता है । जैसे असम्यक् दृष्टि से दो चन्द्रमा भासते हैं तैसे ही सम्यक् दर्शी को एक चन्द्रमावत् सब शान्तरूप आत्मा ही भासता है और भेदभावना से घट पट आदिक अनेक पदार्थ भासते हैं कि मैं दुर्बल हूँ व मोटा हूँ,सुखी हूँ व दुःखी हूँ, यह जगत् है यह काल है, इत्यादिक सो संसार वासनामात्र है । जब मन शरीर की वासनाको त्यागकर

परमार्थ की ओर आता है तब भ्रम को नहीं प्राप्त होता । हे मुनिवर! समुद्र से तरंग उठकर उर्ध्व को जाता है, जो वह जाने मैं तरंग होता हूँ तो मूर्ख है–यही अज्ञान दृष्टि है । ऊर्ध्व को जावेगा तब जानेगा मैं ऊर्ध्व को गया हूँ, नीचे जावेगा तब जानेगा मैं पाताल को गया हूँ, यह कल्पना ही अज्ञान है, वास्तव नहीं । वास्तव दृष्टि यह है जो अधः हो अथवा उर्ध्व हो परन्तु आपको जलरूप जाने । तैसे ही जो पुरुष परिच्छेद देहादिक में अहं प्रतीत करता है सो अनेक भ्रम देखता है,सम्यक्दर्शी सब आत्मरूप जानता है । सर्व जीव आत्मरूप समुद्र के तरंग हैं, अज्ञान से भिन्न हैं और ज्ञान से वही रूप है । आत्मारूपी समुद्र सम, स्वच्छ, शुद्ध आदि रूप, शीतल, अवि नाशी और विस्तृत अपनी महिमा में स्थित है और सदा आनन्दरूप है जैसे कोई जल में स्थित हो और तट पर पहाड़में अग्नि लगी हो तो उस अग्नि का प्रतिबिम्ब जल में देख वह कहे कि मैं दग्ध होता हूँ । जैसे भ्रम से उसको ज्वलनता भासती है तैसे ही जीव को आभासरूप जगत् दुःखदायक भासता है । जैसे तट के वृक्ष, पर्वतादि पदार्थ जल में नाना प्रकार प्रतिबिम्बवत् भासते हैं तैसे ही आभासरूप जगत् को जीव नाना रूप मानते हैं । जैसे एक समुद्र में नाना तरंग भासते हैं तैसे ही आत्मा में अनेक आकार जगत् भासता है, वास्तव में द्वैत कुछ नहीं सर्व शक्तिरूप ब्रह्मसत्ता ही है उसी से विचित्ररूप चञ्चल भासता है पर वह एकरूप अपने आपमें स्थित है । ब्रह्म में जगत् फुरता है और उसी में लीन होता है । जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और फिर उसी में लीन होते हैं, कुछ भेद नहीं, पूर्ण में पूर्ण ही स्थित है जैसे जल से तरंग और ईश्वर से जगत् और पत्र, डाल, फूल, फल, वृक्षरूप हैं तैसे ही सब जगत् आत्मरूप है और वह आत्मा अनेक शक्तिरूप हैं । जैसे एक पुरुष अनेक कर्म का कर्त्ता होता है और जैसा कर्म करता है तैसे ही संग को पाता है अर्थात् पाठ करने से पाठक और पाक करने से पाचक और जाप करने से जापक आदि अनेक नाम धरता है, तैसे ही एक आत्मा अनेक शक्ति धारता है । जैसे जिस आकार की परछाहीं पड़ती है तैसा ही आकार भासता है और एक मेघ में अनेक रंग सहित इन्द्रधनुष भासता है तैसे ही यह अनेक भ्रम पाता है । हे साधो! सब जगत् ब्रह्मा से फुरा है और जो जड़ भासते हैं वे भी चैतन्यसत्ता से फुरे हैं । जैसे मकड़ी अपने मुख से जाला निकालकर आप ही ग्रास लेती है तैसे ही चैतन्य से जड़ उत्पन्न होके फिर लीन हो जाते हैं । चैतन्य जीव से सुषुप्ति जड़ता उपजती है और फिर उसी में निवृत्त होती है । इससे अपनी इच्छा से यह पुरुष बन्धवान् होता है और अपनी इच्छा से ही मुक्त होता है । जब बहिर्मुख देहादिक अभिमान से मिलता है तब आपको बन्धवान् करता है–जैसे घुरान आप ही गृह रचके बन्धवान् होता है और जब पुरुषार्थ करके अन्तर्मुख होता है तब मुक्ति पाता है । जैसे अपने हाथ के बल से बन्धन को तोड़ के कोई बली निकल जाता है । हे साधो! ईश्वर की विचित्ररूप शक्ति है, जैसी शक्ति फुरती है तैसा ही रूप दिखाती है । जैसे ओस आकाश में उपजती है और उसी को ढाँप लेती है तैसे ही आत्मा में जो इच्छाशक्ति उपजती है वही आवरण कर लेती है और उसी में तन्मयरूप होजाती है । वास्तव में जीव को बन्धन और मोक्ष नहीं है, बन्ध और मोक्ष दोनों शब्द भ्रान्तिमात्र हैं, मैं नहीं जानता कि बन्ध और मोक्ष लोक में कहाँसे आये हैं । आत्मा को न बन्धन है और न मोक्ष है, ऐसे सत्‌रूप को असत्यरूप ने ग्रास कर लिया है जो कहता है कि मैं दुःखी व सुखी हूँ, दुबला हूँ व मोटा हूँ इत्यादि माया महाआश्चर्यरूप है जिसने जगत् को मोहित किया है । हे मुनिश्वर! जब चित्तसंवित् कलनारूप होता है तब कुसवारी की नाईं आप ही आपको बन्धन करता है और जब दृश्य से रहित अन्तर्मुख होता है तब शुद्ध मोक्षरूप भासता है । बन्ध और मुक्ति दोनों मन की शक्ति हैं, जैसा–जैसा मन फुरता है तैसा तैसा रूप भासता है । अनेक शक्ति आत्मा से अनन्यरूप है, सब आत्मा से उपजा है और आत्मा में ही स्थित है । जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर लीन हो जाते हैं और चन्द्रमा से किरणें उदय

होकर भिन्न भासतीं पर फिर उसी में लीन होती हैं तैसे ही जीव उपज कर लीन हो जाते हैं । परमात्मारूपी महासमुद्र है, चेतनतारूपी उसमें जल है जिससे जीवरूपी अनेक तरंग उपजते हैं और उसी में स्थित होकर फिर लीन हो जाते हैं । कोई तरंग ब्रह्मारूप, कोई विष्णु, कोई रुद्र होकर प्रकाशते हैं और कोई लहर प्रमाद से रहित यम, कुबेर, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, मनुष्य, देवता, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, किन्नर आदिक रूप होकर उपजते हैं और फिर लीन हो जाते हैं । कोई स्थित होकर चिरकाल पर्यन्त रहते हैं–जैसे ब्रह्मादिक, कोई उपजकर और कुछ काल रहकर विध्वंस हो जाते हैं–जैसे देवता, मनुष्यादिक और कोई कीट सर्प आदिक फुरते हैं और चिरकाल भी रहते हैं और अल्पकाल में भी नष्ट हो जाते हैं । कोई ब्रह्मादिक उपजकर अप्रमादी रहते हैं और कोई प्रमादी हो जाते हैं और तुच्छ शरीर होते हैं यह संसार स्वप्न आरम्भ है और दृढ़ होकर भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे संसारावर्तवर्णन्नामैकादशस्सर्गः ॥११॥

अनुक्रम

उत्पत्तिविस्तारवर्णन

काल बोले, हे मुनीश्वर! देवता, दैत्य, मनुष्यादिक आकार ब्रह्म से अभिन्नरूप हैं और यह सत् है । जब मिथ्या संकल्प से जीव कलंकित होता है तब जानता है कि "मैं ब्रह्म नहीं " इस निश्चय को पाके मोहित होता है और मोहित हुआ अधः को चला जाता है । यद्यपि वह ब्रह्म से अभिन्न रूप है और उसमें स्तित है तो भी भावना के वश से आपको भिन्न जानके मोह को प्राप्त होता है। शुद्ध ब्रह्म में जो संवित् का उल्लेख होता है वही कलंकितरूप कर्म का बीज है, उससे आगे विस्तार को पावता है । जैसे जल जिस जिस बीज से मिलता है उसी रस को प्राप्त होता है तैसे ही संवित् का फुरना जैसे कर्म से मिलता है तैसी गति को प्राप्त होता है । संकल्प से कलंकित हुआ अनेक दुःख पाता है । यह प्रमादरूप कर्म कञ्ज के बीज सा है जिसको जो मु ी भर भर बोता है सो अपने दुःख का कारण है और यह जगत् आत्मरूप समुद्र की लहर है जो विस्तार से फुरती है और कोई ऊर्ध्व को जाती है और कोई अधः को जाती है फिर लीन हो जाती है । ब्रह्मा आदि तृण पर्यन्त इन सबका यही धर्म है जैसे पवन का स्पन्द धर्म है तैसे ही इनका भी है, पर उनमें कोई निर्मल पूजने योग्य ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रादिक हैं, कुछ मोह संयुक्त है– जैसे देवता, मनुष्य, सर्प, कोई अनन्त मोह में स्थित हैं–जैसे पर्वत वृक्षादिक, कोई अज्ञान से मूढ़ हैं– जैसे कृमि, कीटादिक योनि, ये दूर से दूर चले गये हैं । जैसे जल के प्रवाह से तृण चला जाता है तैसे ही देवता, मनुष्य, सर्पादिक कितने भ्रमवान् भी होते हैं और कोई तट के निकट आके फिर बह जाते हैं अर्थात् सत्संग और सत्शास्त्रों को पाके फिर माया के व्यवहार में बह जाते हैं और यमरूप चूहा उनको काटता है । एक अल्प मोह को प्राप्त होकर फिर ब्रह्मसमुद्र में लीन हुए है, कोई अन्त र्गत ब्रह्मसमुद्र को जानके स्थित हुए हैं और तम अज्ञान से तरे हैं, कोई अनेक कोटि जन्म में प्राप्त होते हैं और अधः से ऊर्ध्व को चले जाते हैं । और फिर ऊर्ध्व से अधः को चले आते हैं । इसी प्रकार प्रमाद से जीव अनेक योनि दुःख भोगते हैं । जब आत्मज्ञान होता है तब आपदा से छूट के शान्तिमान होते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे उत्पत्तिविस्तारवर्णनन्नाम द्वादशस्सर्गः ॥१२॥

अनुक्रम

भृगुआसन

काल बोले हे साधो! ये जितने जगत् भूतजाति विस्तार हैं वे सब आत्मरूप समुद्र के तरंग हैं–एक ही अनेक विचित्र विस्तार को प्राप्त हुआ है । जैसे वसन्त ऋतु में एक ही रस अनेक प्रकार के फल फूलों को धारता है इन जीवों में जिसने मन को जीतकर सर्वात्मा ब्रह्म का दर्शन किया है वह जीवन्मुक्त हुआ है । मनुष्य देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्वादिक सब भ्रमते हैं, इनसे इतर स्थावर मूढ़ अवस्था में हैं उनकी क्या बात करनी है । लोकों में तीन प्रकार के जीव हैं–एक अज्ञानी जो महामूढ़ हैं दूसरे जिज्ञासु हैं और तीसरे ज्ञानवान् ।जो मूढ़ है उनको शास्त्र में श्रवण और विचार में कुछ रुचि नहीं होती और जो जिज्ञासु हैं उनके निमित्त ज्ञानवानों ने शास्त्र रचे हैं जिस जिस मार्ग से वे प्रबुध आत्मा हुए हैं उस उस प्रकार के उन्होंने शास्त्र रचे हैं और उससे और जीव भी मोक्षभागी होते हैं । हे मुनीश्वर! सत्शास्त्र जो ज्ञान वानों ने रचे हैं उनको जब निष्पाप पुरुष विचारता है तब उसको निर्मल बोध उपजकर मोह निवृत्त होता है और जब निर्मल बुद्धि होती है तब सूर्य के प्रकाश से तम नष्ट होता है तैसे ही सत्शास्त्र के अभ्यास से मोह नष्ट होता है । जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे आत्मा में प्रमाद और विषय की तृष्णा से मोह को प्राप्त होते हैं । जैसे अँधेरी रात्रि हो और ऊपर से कुहिरा भी गिरता हो तब तम से तम होता है तैसे ही मूढ़ मोह से मोह को प्राप्त होते हैं और अपने संकल्प से आप ही दुःखी होते हैं । जैसे बालक अपनी परछाईं में वैताल कल्पकर आप ही दुःखी होता है इससे जितने भूतजात हैं उन सबके सुख–दुःख का कारण मन रूपी शरीर है, जैसे वह फुरता है तैसीगति को प्राप्त होता है । माँसमय शरीर का किया कुछ सफल नहीं होता और असत् माँस आदिक का मिला हुआ जो आधिभौतिक शरीर है वह मन के संकल्प से रचा है–वास्तव में कुछ नहीं । संकल्प की दृढ़ता से जो आधिभौतिक भासने लगा है वह स्वप्न शरीर की नाईं है । मन रूपी शरीर से जो तेरे पुत्र ने किया है उसी गति को वह प्राप्त हुआ है । इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं है । हे मुनीश्वर! अपनी वासना के अनुसार जैसा कोई कर्म करता है तैसे ही फल को प्राप्त होता है । माँसमय शरीर से कुछ नहीं होता । जैसी–जैसी तीव्र भावना से तेरे पुत्र का मन फुरता गया है तैसी–तैसी गति वह पाता गया है । बहुत कहने से क्या है, उठो अब वहाँ चलो जहाँ वह ब्राह्मण का पुत्र होकर गंगा के तट पर तप करने लगा है । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! इस प्रकार जब काल भगवान् ने कहा तब दोनों जगत् की गति को हँसके उठ खड़े हुए और हाथ से हाथ पकड़के कहने लगे कि ईश्वर की नीति आश्चर्यरूप है जो जीवों को बड़े भ्रम दिखाती है । जैसे उदयाचल पर्वत से सूर्य उदय होकर आकाशमार्ग में चलता है तैसे ही प्रकाश की निधि उदार आत्मा दोनों चले । इस प्रकार जब वशिष्ठजी ने रामजी से कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सर्व सभा अपने अपने स्थानको गई । दिन हुए फिर अपने अपने आसन पर आन बैठे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भृगुआसनन्नाम त्रयोदशस्सर्गः ॥१३॥

अनुक्रम

भार्गवजन्मातरवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काल और भृगुजी दोनों मन्दराचल पर्वत से भूमि पर उतरे और देवताओं के महासुन्दर स्थानों को लाँघते लाँघते वहाँ गये जहाँ ब्राह्मण शरीर से गंगा के किनारे शुक्र समाधि में लगा था उसका मन रूपी मृग अचल होकर विश्राम को प्राप्त हुआ था । जैसे चिरकाल का थका चिरकाल पर्यन्त विश्राम करता है तैसे ही उसने विश्राम पाया । वह अनेक जन्मों की चिन्तना में भटकता भटकता अब तप में लगा था और राग-द्वेष से रहित होकर परमानन्दपद में स्थित था । उसको देख के काल ने बड़े शब्द से कहा, हे भृगो! देख, यह समाधि में स्थित है अब इसे जगाइये । तब उसकी कलना फुरने से और बाहर शब्द से, जैसे मेघ के शब्द से मोर जागे तैसे ही शुक्रजी जागे और अर्धोन्मीलित नेत्र खोलके काल और भृगु को अपने आगे देखा पर पहिचाना नहीं । उसने देखा कि दोनों के श्याम आकार और बड़े प्रकाशरूप हैं-मानों साक्षात् विष्णु और सदाशिवजी हैं । उन्हें देख वह उठ खड़ा हुआ और प्रीतिपूर्वक चरण वन्दना और नम्रतासहित आदर करके कहा कि मेरे बड़े भाग्य हैं जो प्रभु के चरण इस स्थान में आये । वहाँ एक शिला पड़ी थी उस पर वे दोनों बैठ गये तब वसुदेव नाम शुक्र, जिसका तप के संयोग से पीछे सातातप नाम हुआ था उस शान्त हृदय तपसी ने अगम वचन काल और भृगु से कहे । वह बोला, हे प्रभु! मैं तुम्हारे दर्शन से शान्तिमान् हुआ हूँ । तुम सूर्य और चन्द्रमा इक ` मेरे आश्रम में आये हो और तुम्हारे आने से मेरे मन का मोह नष्ट हो गया जो शास्त्रों और तप से भी निवृत्त होना कठिन है । हे साधो! जैसा सुख महापुरुषों के दर्शन से होता है वैसा किसी ऐश्वर्य और अमृत की वर्षा से भी नहीं होता । तुम ज्ञान के सूर्य और चन्द्रमा हो । हे ऋषिश्वरों! तुमने हमारा स्थान पवित्र किया और मैं शान्तात्मा हुआ । तुम कौन हो जो प्रकाशरूप, उदार आत्मा मेरे स्थान पर आये हो? जब इस प्रकार जन्मान्तर के पुत्र ने भृगुजी से पूछा तब भृगुजी ने कहा, हे साधो! तू आपको स्मरण कर कि कौन है? अज्ञानी तो नहीं, तू तो प्रबोध आत्मा है । जब इस प्रकार भृगुजी ने कहा तब नेत्र मूँदकर शुक्र ध्यान में लगा और एक मुहूर्त्त में अपना सब वृत्तान्त देखके नेत्र खोले और विस्मय होकर कहने लगा कि ईश्वर की गति विचित्ररूप है इसके वश होकर मैंने बड़े भ्रम देखे हैं और जगत् रूपी चक्र पर आरूढ़ हुआ मैं अनन्तजन्म भ्रमा हूँ । उन सबको स्मरण करके मैं आश्चर्यवान् होता हूँ कि मैंने बहुत दुःख और अनेक अवस्थाएँ भोगी हैं । स्वर्ग और मन्दार, कल्प वृक्ष, सुमेरु,कैलाश आदिक वनकुञ्जों में मैं रहा और ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो मैंने नहीं पाया, ऐसा कोई कार्य नहीं जो मैंने नहीं किया और ऐसा कोई इष्ट अनिष्ट नरक-स्वर्ग नहीं जो मैंने नहीं देखा । जो कुछ जानने योग्य है वह क्या है? अब मैं आत्मतत्त्व मैं विश्रामवान् हुआ हूँ और संकल्प भ्रम मेरा नष्ट हो गया है । अब आप वहाँ चलिये जहाँ मन्दराचल पर्वत पर मेरा शरीर पड़ा है । हे भगवन्! अब मुझको कुछ इच्छा नहीं है । यद्यपि हेयोपादेय मुझको कुछ नहीं रहा तथापि नीति की रचना देखके कहता हूँ । जो बोध वान् हैं वह प्रकृत आचार में विचरते हैं, आगे जैसी इच्छा हो तैसे कीजिये । बोधवान् उसी आचार को अंगीकार करते हैं । इससे अपने प्रकृत आचार को ग्रहण करके व्यवहार में विचरे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मातरवर्णनन्नाम चतुर्द्दशस्सर्गः ॥१४॥

अनुक्रम

शुक्रप्रथमजीवन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार विचार करके तीनों आकाश मार्ग को चले और शीघ्र ही मेघमण्डल को उल्लंघ के सिद्धों के मार्ग से मन्दराचल पर्वत पर स्वर्ण की कन्दरा में पहुँचे और पूर्व शरीर को देख शुक्र ने कहा, हे तात! मेरे पूर्व शरीर को देखो, जिसे तुमने बहुत पालन किया था। जो शरीर कपूरसुगन्ध से शोभित था और फूलों की शय्या पर शयन करता था, वह अब माटी में लपटा पड़ा है और सूख गया है। जिस शरीर को देख के देव स्त्रियाँ मोहित होती थीं और कण्ठ में मुक्त माला ऐसी शोभित थीं मानों तारों की पंक्ति हैं वह शरीर अब पृथ्वी पर गिर पड़ा है। नन्दन वन में इसने अनेक भोग भोगे हैं और आत्मरूप जान के इसको मैं पुष्ट करता था अब मुझको भयानक भासता है। जो शरीर देवाङ्गनाओं से मिलता और रागवान् होता था वह अब उन की चिन्ता में सूख गया है। जिन जिन विलासों को चाहता था उनको वह करता था और अब वही चित्त से रहित महाअभागी हुआ धूप से सूख गया है और महाविकराल भयानक सा भासता है। जिसको मैं आत्मरूप जानता था, जिसमें अहंकार से विलास करता था और जिसमें फूल कमल पड़ते और तारागण प्रकाशते थे उसमें अब चींटियाँ फिरती हैं। जो शरीर द्रव स्वर्णवत् सुन्दर प्रकाशरूप था वह अब धूप से सूखा भयानक भासता है और सब गुण इसको छोड़ गये हैं– मानों विरक्त आत्मा हुआ और विषय से मुक्त निर्विकल्प समाधि में स्थित हुआ है। हे शरीर! तू अदृष्टि तन को प्राप्त हुआ है, अब तेरे में कोई क्षोभ नहीं रहा। अब चित्तरूपी वैताल तेरे में शान्त हो गया है और आने जाने से रहित विश्रामवान् हुआ है, सब कल्पना तेरी नष्ट हुई है और सुख से सोया है। चित्तरूपी मर्कट से रहित शरीररूपी वृक्ष ठहर गया है और अब अनर्थ से रहित पहाड़ की नाईं अचल हुआ है। यह देह अब सर्वदुःख से रहित परमानन्द में स्थित है। हे साधो! सब अनर्थों का कारण चित्त है। जब तक चित्त शान्तिमान् नहीं होता तब तक जीव को आनन्द नहीं मिलता। जब अमन शक्तिपद को प्राप्त होता है तब महा आधि व्याधि जगत् के दुःखों को तर के विगत परमानन्द को प्राप्त होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सर्व धर्मों के वेत्ताभृगु का जो शुक्र पुत्र था उसने तो अनेक शरीर धरे थे और बहुत भोग भोगे थे तो भृगु से जो शरीर उत्पन्न था तिसको देख बहुत शोच किया और देहों का चिन्तन क्यों न किया? इसका क्या कारण है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुक्र की संवेदन कलना जो जीवभाव को प्राप्त हुई थी सो कर्मात्मक होकर भृगु से उपजी। सुनो, आदि परमात्मतत्त्व से चित्तकला फुरकर भूताकाश को प्राप्त हुई और वही वातकला में स्थित होकर प्राण, अपान के मार्ग से भृगु के हृदय में प्रवेश कर गई और वीर्य के स्थान को प्राप्त होकर गर्भमार्ग से उत्पन्न हो क्रम करके बड़ी हुई जिससे विद्या और गुणसम्पन्न शुक्र का शरीर हुआ। उस शरीर को जो उसने चिरकाल सेवन किया था इससे उसका शोचकिया। यद्यपि वह वीतराग और निरिच्छित था तो भी चिरकाल जो अभ्यास किया था वही फुर आया। हे रामजी! ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी, व्यवहार दोनों का तुल्य होता है परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है। ज्ञानवान् असंशक्त निर्लेप रहता है और अज्ञानी क्रिया में बन्धवान् होता है। ज्ञानवान् मोक्षरूप है और अज्ञानी दरिद्र है। जैसे वन में जाल से पक्षी फँसता है तैसे ही अज्ञानी लोकव्यवहार में बन्धवान् होता है। व्यवहार जैसे ज्ञानी करता है तैसे ही अज्ञानी करता है। जो वासना रहित है वह निर्बन्ध है, वासनासहित बन्ध है इससे वासनामात्र भेद है। जब तक शरीर है तब तक सुखदुःख भी होता है परन्तु ज्ञानवान् दोनों में शान्तबुद्धि रहता है और अज्ञानी हर्ष शोक से तपायमान होता है। जैसे थम्भे का प्रतिबिम्ब जल के हिलने से थम्भ हिलता भासता है परन्तु स्वरूप में स्थित ही है तैसे ही अज्ञान में सुख–दुःख से सुखी–दुःखी भासता है, परन्तु स्वरूप ज्यों का त्यों है। जैसे सूर्य का

प्रतिबिम्ब जल के हिलने से हिलता भासता है परन्तु स्वरूप से ज्यों का त्यों है तैसे ही ज्ञानवान् इन्द्रियों से सुखी–दुःखी भासता है पर स्वरूप से ज्यों का त्यों है । अज्ञानी बाहर से क्रिया का त्याग करता है तो भी बन्ध रहता है और ज्ञानवान् क्रिया करता है तो भी मोक्षरूप है । अन्तर में जो अनात्मधर्म में बन्धवान् है वह बाहर कर्म इन्द्रिय से मुक्त है तो भी बन्धन में है और जो अन्तर से मुक्त है वह कर्मइन्द्रिय से बन्धन भासता है तो भी मुक्तरूप है । जो सब क्रीड़ा को त्याग बैठा है और हृदय में जगत् की सत्यता रखता है वह चाहे कुछ करे वा न करे तो भी बन्धन में है और जो बाहर चाहे जैसा व्यवहार करता है पर हृदय में अद्वैत ज्ञान है तो मुक्तरूप है– उसको कर्म बन्धन नहीं करता । इससे हे रामजी! सब कार्य करो पर अन्तर से शून्य रहकर सर्व एषणा से रहित आत्मपद में स्थित हो जाओ और अपने प्रकृत व्यवहार को करो । यह संसार रूपी समुद्र है जिसमें आदि व्याधि अहं ममतारूपी गढ़ा है जो उसमें गिरता है वह ऊर्ध्व से अधः को जाता है । इससे संसार के भाव में मत स्थित हो और शुद्ध बुद्ध आत्म स्वभाव में स्थित हो । जो ब्रह्म शुद्ध, सर्वात्मा, निर्विकार, निराकार आत्मपद में स्थित हैं उनको नमस्कार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे शुक्रप्रथमजीवनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः ॥१५॥

अनुक्रम

भार्गवजन्मान्तर वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जब शुक्र ने शरीर का वर्णन किया और विकरालरूप देख के उसमें त्याग बुद्धि की तब काल भगवान् शुक्र के वचन को न मान के गम्भीर वाणी से बोले, हे शुक्र! तू इस तपरूपी शरीर को त्यागकर भृगु के पुत्र का जो शरीर है उसको अंगीकार कर । जैसे राजा देशदेशान्तर को भ्रमता भ्रमता अपने नगर में आता है तैसे ही तू भी इस शरीर में प्रवेश कर, क्योंकि भार्गव तन से तुझे असुरों का गुरु होना है । यह आदि परमात्मा की नीति है, महाकल्पपर्यन्त तेरी आयु है । जब महाकाल का अन्त होगा तब भार्गव तन नष्ट होगा और फिर तुझको शरीर का ग्रहण न होगा । जैसे रस सूखे से पुष्प गिर पड़ता है तैसे ही प्रारब्ध वेग के पूर्ण होने से तेरा शरीर गिर पड़ेगा और शरीर के होते जीवन्मुक्त को प्राप्त हुआ प्राकृत आचार में विचरेगा । इससे इस शरीर को त्यागकर भार्गव शरीर में प्रवेश कर ।अब हम जाते हैं, तुम दोनों का कल्याण हो और तुमको वाञ्छित फल मिले । इतना कहकर वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काल भगवान् ऐसे कहकर और दोनों पर पुष्प डालकर अन्तर्धान हो गये । तब वह तपसी नीति को विचारने लगा कि क्या होना है । विचारकर देखा तो विदित हुआ कि जैसे काल भगवान् ने कहा है तैसे ही होना है । ऐसे विचार के महाकृशरूप जो शरीर था उसमें प्रवेश किया और तपस्वी ब्राह्मण का देह त्याग दिया । तब उस शरीर की शोभा जाती रही और कम्पकम्प के पृथ्वी पर गिर पड़ा । जैसे मूल के काटे से बेलि गिर पड़ती है तैसे ही वह देह गिरा और शुक्रदेह जीवकला संयुक्त हो आया ।तब भृगुजी उस कृश देह को जीवकला संयुक्त देखके उठ खड़े हुए और हाथ में जल का कमण्डलु ले मन्त्रविद्या से जो पुष्टिशक्ति है पाठकर पुत्र के शरीर पर जल डाला और उसके पड़ने से शरीर की सब नाड़ियाँ पुष्ट हो गईं । जैसे वसन्तऋतु में कम लिनी प्रफुल्लित होती हैं तैसे ही उसका शरीर प्रफुल्लित हो आया और स्वास आने–जाने लगे । तब शुक्र पिता के सन्मुख आया और जैसे मेघ जल से पूर्ण होकर पर्वत के आगे नमता है तैसे ही विधिसंयुक्त नमस्कार करके शिर नवाया और स्नेह से नेत्रों में जल चलने लगा । तब पुत्र को देखके भृगुजी ने उसे कण्ठ लगाया कि यह मेरा पुत्र है । ऐसे स्नेह से पूर्ण हो गया । हे रामजी! जब तक देह है तब तक देह के धर्म फुर आते हैं । इसी प्रकार भृगु ज्ञानी को भी ममता स्नेह फुर आया तो और की क्या बात है? पिता और पुत्र दोनों बैठ गये और एक मुहूर्त्त पर्यन्त कथा वार्ता करते रहे । फिर उठकर उन्होंने उस तपस्वी शरीर को जलाया, क्योंकि बुद्धिमान् शास्त्राचार में स्थित होते हैं । इसके अनन्तर जिनका वपु तप से प्रकाशता है और जिनकी श्यामकान्ति है ऐसे जीवन्मुक्त उदारात्मा होकर वहाँ रहे और समय पा करके शुक्रजी दैत्यों का गुरु होगा और भृगुजी समाधि में स्थित होंगे । इससे जो सब विकार से रहित जीवन्मुक्त पुरुष जगत्गुरु हैं वह सबके पूजने योग्य हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवजन्मान्तर वर्णनन्नाम षोडशस्सर्गः ॥१६॥

अनुक्रम

मनोराजसम्मिलन वर्णन

रामजी बोले, हे भगवन्! जैसे भृगु के पुत्र को यह प्रतिभा फुरती गई और सिद्ध होती गई तैसी ही और जीवों को क्यों नहीं सिद्ध होती? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! शुक्र का जो ब्रह्मतत्त्व से फुरना हुआ वही भार्गव जन्म हुआ और जन्म से कलंकित नहीं हुआ वह सर्व एषणा से रहित शुद्ध चैतन्य था। निर्मल हृदय को जैसी स्फूर्ति होती है तैसे ही सिद्ध हो जाती है और मलिन हृदयवान् का संकल्प शीघ्र ही सिद्ध नहीं होता जैसे भृगु के पुत्र को मनोराज हुआ और भ्रमता फिरा तैसे ही सब ही स्वरूप के प्रमाद से भ्रमते हैं। जब तक स्वरूप का साक्षात्कार नहीं होता तब तक शान्ति प्राप्त नहीं होती। यह मैंने भृगु के पुत्र का वृत्तान्त मनोराज की दृढ़ता के लिए तुमको सुनाया है। जैसे बीज ही अंकुर, फूल, फल अनेक भाव को प्राप्त होता है तैसे ही सब भूतजात को मन का भ्रमना अनेक भ्रम को प्राप्त करता है। जो कुछ जगत् तुमको भासता है वह सब मन के फुरने रूप है, मिथ्याभ्रम से नानात्व भासता है और कुछ नहीं है एक-एक ऐसा प्रति भ्रम है और सब संस्करणमात्र है, न कुछ उदय होता और न अस्त होता सब मिथ्यारूप मायामात्र है। जैसे स्वप्नपुर और संकल्पनगर भासता है तैसे ही परस्पर व्यवहार दृष्टि आते हैं पर कुछ नहीं है तैसे ही वह जाग्रतभ्रम भी अज्ञान से दृष्टि आता है। भूत, पिशाच आदिक जितने जीव हैं उनका भी संकल्पमात्र शरीर है, जैसे उनको सुख दुःखों का भोग होता है तैसे ही तुम हमको भी होता है। जैसे यह जगत् है तैसे ही अनन्त जगत् बसते हैं और एक दूसरे को नहीं जानता। जैसे एक स्थान में बहुत पुरुष शयन करते हों तो उनको मनोराज और स्वप्नभ्रम परस्पर अज्ञान होता है तैसे ही यह जगत् है, वास्तव में कुछ नहीं केवल ब्रह्मसत्ता अपने आप में स्थित है। जो इस जगत् को सत् जानता है पुरुषार्थ नष्ट होता है जो वस्तु भ्रान्ति से भासती है उसका सम्यक ज्ञान से अभाव हो जाता है। यह जाग्रत् जगत् भी दीर्घ स्वप्नाहै। चित्तरूपी हस्ती को बन्धन है और चित्तसत्ता से जगत् सत् भासता है और जगत् सत्ता से चित्त है। एक के नाश होने से दोनों का नाश हो जाता है। जो जगत् का सत्भाव नष्ट होता है तब चित्त नहीं रहता और जब चित्त उपशम होता है तब जगत् शान्त होता है। इस प्रकार एक के नाश होने से दोनों का नाश होता है। दोनों का नाश आत्म विचार से होता है। जैसे उज्ज्वल वस्त्र पर केशर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है, मलिन वस्त्र पर नहीं चढ़ता तैसे ही जिसका निर्मल हृदय होता है उसको विचार उपजता है। हृदय तब निर्मल होता है जब शास्त्र के अनुसार क्रिया करता है। हे रामजी! एक एक जीव के हृदय में अपनी-अपनी सृष्टि है। पर मलीन चित्त से एक को दूसरा नहीं जानता। जब चित्त शुद्ध होता है तब और की सृष्टि को भी जान लेता है। जैसे शुद्ध धातु परस्पर मिल जाती है। जब दृढ़ अभ्यास होता है तब चिरपर्यन्त सब कुछ भासने लगता है, क्योंकि सबका अधिष्ठाता एक आत्मा है उसमें स्थित होने से सबका ज्ञान होता है। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! शुक्र को प्रतिभामात्र आभास हुआ था उससे देश, काल, क्रिया, द्रव्य उसको दृढ़ होकर कैसे भासे? वशिष्ठजी बोले, हेरामजी! शुक्र ने अपने अनुभवरूपी भण्डार में मन से जगत् देखा। जैसे मोर के अण्डे से अनेक रंग निकलते हैं तैसे ही उसको अपने हृदय में भ्रम भासित हुआ। जैसे बीज से पत्र टास, फूल, फल निकलते हैं तैसे ही जीव को अपने अपने अनुभव में संसार खण्ड फुरते हैं यहाँ स्वप्न दृष्टान्त प्रत्यक्ष है। जैसे एक एक के स्वप्ने में जगत् होता है तैसे ही यह जगत् है। दीर्घ स्वप्ना जाग्रत् हो भासता है और जैसा दृढ़ होता है तैसा ही भासने लगता है। फिर रामजी ने पूछा; हे भगवन्! सृष्टि के समूह परस्पर मिलते कैसे हैं और नहीं कैसे मिलते? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मलीन चित्त परस्पर नहीं मिलता, शुद्ध मिलता है-जैसे शुद्ध धातु मिल जाती है। सुषुप्तिरूप आत्मा से सब फुरते हैं सो

तन्मयरूप हैं, जिसको उसमें विश्राम होता है सो ज्ञानदृष्टि से सबसे मिल जाता है । जैसे जल से जल मिल जाता है तैसे ही वह सबसे मिलकर सबको जानता है, अन्य नहीं जानता ।

इति श्री योगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे मनोराजसम्मिलन वर्णनन्नाम सप्तदशस्सर्गः ॥१७॥

अनुक्रम

जीवपदवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो कुछ संसारखण्ड है उन सबका बीजरूप आत्मा है और सब आत्मा का आभास है । आभास के उदय अस्त होने में आत्मसत्ता ज्यों की त्यों है, अपने स्वभाव के त्याग से रहित है, सर्वजीवों का अपना आप वास्तवरूप है और सुषुप्ति की नाईं अफुर है । उसी सत्ता में जीव फुरते हैं तब स्वप्नवत् जगत् भ्रम देखते हैं । जीव जीव प्रति अपनी अपनी सृष्टि स्थित है, जो पुरुष उलट के आत्म परायण होता है वह आत्मपद में प्राप्त होता है । जिस पुरुष को आत्मब्रह्म से एकता हुई है उसको परस्पर और की सृष्टि भासती है । अन्तःकरण में सृष्टि होती है सो उसका अन्तःकरण मिलता है और उस अन्तःकरण जीवकला के मिले से परस्पर सृष्टि भास आती है सबका अपना आप सन्मात्र सत्ता है, उसमें सब सृष्टि स्थित होती है । जैसे कपूर का पर्वत हो तो उसके अणु–अणु में सुगन्ध होती है और सर्वअणु सुगन्ध पर्वत में एकता होती है तैसे ही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मसत्ता है । जैसे सब नदियों के जल का अधिष्ठान समुद्र है तैसे ही सब जीवों का अधिष्ठान आत्मा है । सृष्टि कहीं परस्पर मिलती है और कहीं भिन्न भिन्न स्थित है । जहाँ चेतनमात्र सत्ता से एकता है वहाँ चित्त की वृत्ति जिसके साथ मिलनी चाहे उसको मिल जाती है पर मलीन चित्तवाला नहीं मिल सकता । एक एक जीव में सहस्त्रों सृष्टि परस्पर गुप्त होती हैं । जहाँ जैसा फुरनादृढ़ होता है वहाँ वैसा ही भासता है, जहाँ मन का फुरना कोमल होता है सो सफल नहीं होता और जहाँ दृढ़ होता है सो भासने लगता है । हे रामजी! जब देह की भावना मिट जाती है तो प्राण पवन ही स्थित करने से चित्त की वृत्ति स्वभाव में स्थित होती है और तब और के चित्त की चेष्टा अपने चित्त में फुर आती है । और जब तक चित्त मलीन होता है और देह की भावना को नहीं त्यागता तब तक किसी पदार्थ से एकता नहीं होती । जिसका चित्त निर्मल होता है उसको जैसे और के चित्त का ज्ञान हो आता है तैसे ही और सृष्टि में मिलने की भी शक्ति होती है, अशुद्ध को नहीं होती । सर्व जीवों की तीन अवस्था होती हैं–जाग्रत और सुषुप्ति यह तीनों ही अवस्था आत्मा में जीवित का लक्षण है । जैसे मृगतृष्णा की नदी के तरंग सूर्य की किरणों में हैं वास्तव में उनका अभाव है तैसे ही जीव को आत्मा में प्रमाद है उससे तीनों अवस्था ओं में भटकता है । जब चित्तकला तुरीया में स्थित होती है तब जीवन्मुक्त होता है । आत्मसत्ता स्वभाव में स्थित हुए से आत्मा से एकता को प्राप्त होता है और सबजीव से सुहृद्भाव होता है । जब अज्ञानी पुरुष सुषुप्तिरूप आत्मसत्ता से जागता है अर्थात् संसार को चितवता है तब संसार को प्राप्त होता है वह संसार में और संसार उसमें, इस प्रकार प्रमाद करके अनेक सृष्टि देखता है । जैसे केले के थम्भ से पत्र का समूह निकल आता है तैसे ही वह सृष्टि से सृष्टि को देखता है, शान्ति नहीं पाता और जब उलटके अपने स्वभाव में स्थित होता है तब नानात्वभाव मिट जाता है और शान्तरूप होता है–जैसे केले के भीतर शीतल होता है । हे रामजी! जगत् के समूह भासते हैं तो भी आत्मा में द्वैत नहीं जैसे केले के भीतर पत्रों से भिन्न कुछ नहीं निकलता तैसे ही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं । जैसे बीज ही फूलभाव को प्राप्त होता है और फूल से फिर बीज होता है तैसे ही ब्रह्म से मन होता है और बुद्धि से ब्रह्म होता है। जीव का कारण रस है, आत्मा के कारण कुछ नहीं बनता, वह तो अद्वैत अचिन्त्यरूप है । आदि परमात्मा अकारणरूप है, वही विचारने योग्य है और से क्या प्रयोजन है? बीज जब अपने भाव को त्यागता है तब फूलभाव को प्राप्त होता है ब्रह्मसत्ता अपने स्वभाव को कदाचित नहीं त्यागती । बीज परिणाम से आकाररूप होता है आत्मा अकृत्रिम निराकार और अच्युतरूप है, इस कारण आत्मा बीज की नाईं भी नहीं कहा जा सकता । आकाश से आकाश नहीं उपजता और अभिन्नरूप है, न कोई उपजा है, न किसी को उपजाया है,

केवल ब्रह्म आकाश अपने आप में स्थित है । जब दृष्टा पुरुष को देखता है तब आपको नहीं देख सकता, क्योंकि जब मनोराज का परिणाम जगत् में जाता है तब विद्यमान वस्तु की सँभाल नहीं रहती । देहादिक में आत्म–अभिमान होता है । जो पुरुष आत्मसत्ता को देखता है उसको जगत्भाव नहीं रहता और जो जगत् को देखता है उसको आत्मसत्ता नहीं भासती । जैसे जो मृग तृष्णा की नदी को झूठ जानता है उसको जल भाव नहीं रहता और जो जल जानता है उसको अस्तबुद्धि नहीं होती । आकाश की नाईं पूर्ण पुरुष दृष्टा है वह जब इस दृश्य की ओर जाता है तब आप को नहीं देख सकता । आकाश की नाईं ब्रह्मसत्ता सब ठौर पूर्ण है सो अज्ञानी को नहीं भासती, उसे जो दृश्य का अत्यन्ताभाव है वही भासता है, अनुभव का भासना दूर हो गया है । हे रामजी! स्थूलपदार्थ के आगे पटल आता है तब वह नहीं भासता तो जो सूक्ष्म निराकार दृष्टा पुरु ष है उसके आगे आवरण आवे तब वह कैसे भासे? जो दृष्टा पुरुष है वह अपने ही भाव में स्थित है दृश्यभाव को नहीं प्राप्त होता, दृश्य भासता है तब दृष्टा नहीं दीखता और दृश्य कुछ वस्तु है नहीं । इससे दृष्टा एक परमात्मा ही अपने आप में स्थित है, जो आत्मरूप सर्वशक्तिमान् देव है । जैसा फुरना उसमें होता है वैसा ही शीघ्र भास आता है । जैसे वसन्त ऋतु में एक रस अनेक रूपों को धारता है और उससे टास, फल फूल होते हैं तैसे ही एक आत्मसत्ता अनेक जीव देह होके भासती है । जैसे अपने ही भीतर अनेक स्वप्नभ्रम देखता है तैसे ही अहं आदिक जगत् दृश्य भ्रम का अनुभव ही प्राप्त होता है और स्वरूप से और कुछ नहीं हुआ । जैसे एकबीज के भीतर पत्र, टास, फूल, फल अनेक होते हैं और उसमें और बीज होता है, बीज के भीतर और वृक्ष और उसके भीतर और बीज होता है इसी प्रकार एक बीज के भीतर अनेक वृक्ष होते हैं, तैसे ही एक आत्मा में और अनेक चिद्अणु फुरते हैं, उनके भीतर सृष्टि होती है और फिर उन सृष्टियों के भीतर चिद्अणु, फिर चिद्अणु के भी सृष्टि, इसी प्रकार अनेक सृष्टिरूप ब्रह्माण्ड हैं उनकी संख्या कुछ कही नहीं जाती वे सब अपने आप से फुरते हैं और आप ही स्वाद लेता है । जैसे तिल में तेल है तैसे ही चिद्अणु में आकाश, पवन आदिक अनेक सृष्टि स्थित है । आकाश में पवन, अग्नि में जल, सर्वभूतों में पृथ्वी सृष्टि स्थित हैं । ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो चित्त से सत्तारहित हो, जहाँ चित्त है वहाँ उसका आभास रूप दृष्टा भी स्थित है । जैसे डब्बे में लौंग होते हैं तो उनके नष्ट होने से डब्बा नहीं होता । जैसा जैसा उसमें फुरना होता है तैसा ही तैसा स्थित होता है । सबका अधिष्ठानरूप आत्मा है, जैसे कमल को पूर्ण करनेवाला जल है उससे सब स्फूर्ति होते और प्रकाशते हैं तैसे ही सब सृष्टि को सत्ता देनेवाला और आश्रयरूप आत्मतत्त्व है । यह जगत् दीर्घ स्वप्नरूप अपने अनुभव से उदय हुआ है सो बाह्यरूप होकर भासता है, उस स्वप्न से और स्वप्नान्तर होता है उसके आगे और स्वप्ना होता है, इसी प्रकार सृष्टि की स्थिति हुई है । जैसे एक बीज से अनेक वृक्ष होते हैं तैसे ही एक चिद्अणु में अनेक सृष्टि स्थित हैं । जैसे जल में अनेक तरंग भासते हैं तैसे ही आत्मअनुभव में अनेक जगत् भासते है और अभिन्नरूप हैं । इससे द्वैतभ्रम को तुम त्याग दो, न कोई देश है न काल क्रिया है, केवल एक अद्वैत आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मसत्ता अपने आप में स्थित है । ब्रह्मा से कीट पर्यन्त जो जगत् भासता है सो एक परमात्मा ही अपने आप में किंचनरूप होता है । जैसे एक रससत्ता ही कहीं फल और सुगन्ध सहित भासती है और कहीं काष्ठरूप को प्राप्त होती है तैसे ही एक परमात्मसत्ता कहीं चैतन्य और कहीं जड़रूप होकर दिखाई देती है । जो सर्वगत अविनाशी आत्मा है वही सबका बीजरूप है और उसी के भीतर सब जगत् स्थित है । पर जिसको आत्मा का प्रमाद है उसको नानारूप भासता है । जैसे कोई जल में डूबे और फिर निकले, फिर डूबे, फिर निकले और जैसे स्वप्न में और स्वप्न होता है, तैसे ही प्रमाद दोष से भ्रम से भ्रमान्तर नाना प्रकार के जगत् जीव देखता है । जगत्

और आत्मा में कुछ भेद नहीं है, क्योंकि जगत् कुछ है नहीं, आत्मा हो जगत् सा हो भासता है । जैसे विचार रहित को सुवर्ण में भूषण बुद्धि होती है और विचार किये से भूषणबुद्धि नष्ट हो जाती है, सुवर्ण ही भासता है, तैसे ही जो विचार से रहित है उसको यह जगत् पदार्थ भासते हैं कि यह मैं हूँ यह जगत् है यह उपजा है और यह लीन होता है, और जिसको सत्संग और शास्त्र के संयोग से विचार उपजा है उसको दिन प्रतिदिन भोग की तृष्णा घटती जाती है और आत्मविचार दृढ़ होता जाता है । जैसे किसी को ताप आता हो तो औषध करके निवृत्त हो जाती है, दूसरे शरीर से तपन निवृत्त हो जाती है और शीतलता प्रकट होती है तैसे ही ज्यों ज्यों दृढ़ होता है त्यों त्यों इन्द्रियों को जीतता है सन्तोष से हृदय शीतल होता है और सर्व आत्मा ही भासता है । यह विवेक का फल है । हे रामजी! जैसे अग्नि के लिखे चित्र से कुछ कार्य नहीं सिद्ध होता तैसे ही निश्चय से रहित वचन का विवेक दुःख की निवृत्ति नहीं करते और शान्ति प्राप्त नहीं होती । जैसे जब पवन चलता है तब पत्र और वृक्ष हिलते हैं और उसका लक्षण भासता है पर वाणी से कहिये तो नहीं हिलते तैसे ही जब विवेक हृदय में आता है तब भोग की तृष्णा घट जाती है, मुख के कहने से तृष्णा घटती नहीं । जैसे अमृत का लिखा चित्र पान करने से अमर होने का कार्य नहीं करता, चित्र की लिखी अग्नि शीत नहीं निवृत्त करती और स्त्री के चित्र के स्पर्श से सन्तान उपजने का कार्य नहीं होता तैसे ही मुख का विवेक वाणी विलास है और भोग की तृष्णा को निवृत्त करके शान्ति को नहीं प्राप्त करता । जैसे चित्र देखने ही मात्र होता है तैसे ही वह विवेक वाग्विलास है । हे रामजी! प्रथम जब विवेक आता है तब राग–द्वेष को नाश करता है और ब्रह्मलोक पर्यन्त जो कुछ विषय भोग रूप है उनसे तृष्णा और वैरभाव को नष्ट करता है । जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है तैसे ही विवेक उदय होने से अज्ञान नष्ट हो जाता है और पावन पद की प्राप्ति होती है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवपदवर्णनन्नाम अष्टादशस्सर्गः ॥१८॥

अनुक्रम

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूप वर्णन

वशिष्ठजी बोले हे रामजी! सर्वजीवों का बीज परमात्मा है और वह सर्व ओर से आकाश की नाईं स्थित है । उसके फुरने का नाम जीव है और उस जीव के भीतर जगत् है उसके आगे और नाना प्रकार की रचना है, पर वास्तव में चिद्धन जीव के रूप से भीतर स्थित हुआ है इससे सब जीव चिद्धनरूप हैं । जैसे केले के थम्भ में पत्र होते हैं तैसे ही आत्म सत्ता के भीतर जीव स्थित हैं । जैसे शरीर के भीतर कीट होते हैं तैसे ही आत्मा के भीतर जीवराशि हैं और जैसे प्रस्वेद से जूँ और लीख आदिक जीव उपजते हैं और दूसरे पदार्थ में कीट उपज आते हैं तैसे ही आत्मा में चित्तकला के फुरने से जीव के समूह फुर आते हैं ।फिर जीव जैसी जैसी सिद्धि के निमित्त यत्न उपासना करते हैं तैसी तैसी गति पाते हैं । जो देवता की उपासना करते हैं वह देवता को प्राप्त होते हैं और यज्ञ के उपासक यज्ञ को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार जिसकी जो उपासना करते हैं उसी को वे प्राप्त होते हैं । ब्रह्म के उपासक ब्रह्म को ही प्राप्त होते हैं । इससे जो अतुच्छपद है उस महत्पद का तुम आश्रय करो । जैसे शुक्र जब दृश्य के ओर लगा तब उसने अनेक प्रकार के दृश्य भ्रम को देखा और जब शुद्धबुद्धि की ओर आया तब निर्मल बोध को प्राप्त हुआ तैसे ही जिस की कोई उपासना करता है उसी को वह प्राप्त होता है, अन्य को नहीं प्राप्त होता । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जाग्रत और स्वप्न का भेद कहिये कि जाग्रत क्या है और स्वप्न क्या है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! स्थिर प्रतीति का नाम जाग्रत् है अस्थिर प्रतीत का नाम स्वप्न है जो चिरकाल रहता है उसका नाम स्थिर है और जो अल्पकाल रहे उसका नाम अस्थिर है अर्थात् दीर्घकाल प्रतीति का नाम जाग्रत है और अल्पकाल का नाम स्वप्न है । इनमें कोई विशेष भेद नहीं है, दोनों का अनुभव सम होता है । शरीर के भीतर स्थित होकर जो शरीरको जिवाता है उसका नाम जीव है । वह तेज और बीजरूप है । जीव धातु है यह सब उसके नाम हैं । जब जीवधातु स्पन्दरूप होता है तब वह शरीर के रन्ध्रो में फैलता है, मन, वाणी और देह से सब व्यवहार होता है और रन्ध्र खुल जाते हैं तब उसको जाग्रत् कहते हैं । जब चित्तकला जाग्रत व्यवहार में स्पष्टरूप होती है और भीतर होकर फुरती है तब उसके भीतर जगत् भ्रम भासने लगता है, वह स्वप्ना कहाता है । अब सुषुप्ति का क्रम सुनो । मन, वाणी और शरीर से जहाँ कोई क्षोभ नहीं और स्वच्छ वृत्ति जीवधातु भीतर स्थित है, हृदयकोश में प्राणवायु से क्षोभ नहीं होता और नाड़ी रस से पूर्ण होती है उस मार्ग से प्राण आने जाने से रहित होते हैं और क्षोभ से रहित सम वायु चलता है उसका नाम सुषुप्ति है । जैसे वायु से रहित एकान्त गृह में दीपक उज्ज्वल प्रकाशता है तैसे ही वहाँ संवित्सत्ता अपने आपका अनुभव लेती है । जैसे तिलो में तेल स्थित होता है तैसे ही जीव संवित् कलना से जो कल्पता है सो उस काल में अपने आप में स्थित होता है । जैसे बरफ़ में शीतलता और घृत में चिकनाई होती है तैसे ही वहाँ संवित्सत्ता स्थित होती है, उसका नाम सुषुप्ति अवस्था है । जड़रूप उस सुषुप्ति अवस्था से जागकर दृश्यभाव को न प्राप्त हो और निर्विकल्प प्रकाश में स्थित हो सो ज्ञानरूप तुरीय है । तब यह व्यवहार करे तो भी जीवन्मुक्त है, वह जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में बन्धवान् नहीं होता । हे रामजी! आत्मसत्ता से फुरना होकर स्वरूप विस्मरण हो जाता है और फुरना दृढ होकर स्थित होता है इसी का नाम जाग्रत है । स्वरूप से प्रमाद दोष करके फुरे और जो जगत् भासे उसको सत्‌रूप जाने और यह प्रतीत थोड़े काल रहकर फिर निवृत्त होजावे इसका नाम स्वप्न है । दृश्य के फुरने का अभाव हो जावे और अज्ञानवृत्ति जड़तारूप रहे उसका नाम सुषुप्ति है । अनुभव में ज्ञान स्थित रहे और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति का व्यवहार हो, पर निश्चय में इनका सद्भाव रञ्चक भी न हो, केवल ज्ञान में अहंप्रतीति हो और वृत्ति उससे चलायमान न हो उसका नाम तुरीया पद है उसमें

स्थित हुआ जीवन्मुक्त होता है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओं में जीव स्थित होते हैं । जब नाड़ी अन्न के रस से पूर्ण हो जाती है और प्राणवायु हृदय नाम्नी नाड़ी में नहीं आता तब चित्तसंवित अक्षोभरूप सुषुप्ति होता है । जब अन्न उस नाड़ी से पचता है और प्राणवायु चलने लगता है तब चित्तसंवित क्षोभ रूप फुरने लगता है और उस फुरने से अपने भीतर हो बड़े जगत् भ्रम देखता है, बीज से वृक्ष होता है जब वायु का रस नाड़ी में बहुत होता है तब चित्त सत्ता आकाश में उड़ना वायु, अँधेरी आदिक पदार्थों को देखता है, जब कफ का रस नाड़ी में अधिक होता है तब फूल, बेल, बावलियाँ, जल, मेघ, बगीचे आदिक पदार्थ भासते हैं और जब पित्त की अधिकता होती है तब उष्णरुप अग्नि, रक्त, वस्त्र आदिक भासने लगते हैं । इस प्रकार वासना के अनुसार जगत्भ्रम देखता है और जैसी भावना दृढ़ होती है तैसा ही पदार्थ दृढ़ हो भासता है जब पवन क्षोभायमान होता है तब चित्तसंवित् नेत्र आदिक द्वार के बाहर निकलकर रूपादिक का अनुभव करता है । चिरपर्यन्त सत् जानने का नाम जाग्रत है । वासना के अनुसार मनरूपी शरीर से जीव नेत्र, जिह्वादिक बिना जो रूप रसादिक का अनुभव होता है उसका नाम स्वप्न है पर स्वरूप से न कोई स्वप्ना है, न जाग्रत है और न सुषुप्ति है, केवल सत्ता अपने आप में स्थित है, उसी के फुरने का नाम जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति है । चिरकाल फुरने का नाम जाग्रत है और अल्पकाल फुरने का नाम स्वप्ना है सो केवल प्रतीति का भेद है । वास्तव में कुछ भेद नहीं और जो वास्तव में भेद न हुआ तो जगत् स्वप्नरूप हुआ । इससे यही भावना दृढ़ करो कि जगत् असत्रूप स्वप्नवत् है इसमें सत्भावना करनी दुःख का कारण है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठेस्थितिप्रकरणे जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितुरीयारूप वर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्गः ॥१९॥

अनुक्रम

भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह मैंने तुमको मन का रूप निरूपण करके दिखाया है और अवस्थाओं का निरूपण भी इसी निमित्त किया है, और प्रयोजन कुछ नहीं । इससे जैसा निश्चय चित्त में होता है तैसा ही हो भासता है । जैसे अग्नि में लोहा डालिये तो अग्निरूप हो जाता है तैसे ही मन जिस पदार्थ से लगता है उसी का रूप हो जाता है । भाव अभाव, ग्रहण, त्याग, सब मन ही से होते हैं, न कोई सत् है न असत् है केवल मन की चपलतासे सब फुरते हैं । मन के मोह से ही जगत् भासता है और मन के नष्ट होने से नष्ट हो जाता है । जो मलीन मन है सो अपने फुरने से जगत् को रचता है यह मन ही पुरुष है इसको तुम अशुभमार्ग में न लगाना । जब मन को जीतोगे तब सब जगत् में तुम्हारी जय होगी । मन के जीते से सब जगत् जीता है और तब बड़ी विभूति प्राप्त होती है । जो शरीर का नाम पुरुष होता तो शुक्र का शरीर पड़ा था, वह दूसरा शरीर न रचता पर उसका शरीर तो वहाँ पड़ा रहा और मन अन्य शरीर को रचता फिरा, इससे शरीर का नाम पुरुष नहीं मन ही का नाम पुरुष है । शरीर चित्त का किया होता है, शरीर का किया चित्त नहीं होता । जिस ओर चित्त जा लगता है उसी पदार्थ की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं । इससे यह अतितुच्छ पद है । आत्म सत्ता का चित्तमें सदा अभ्यास करो और भ्रम को त्याग दो । जब मन दृश्य की ओर संसरता है तब अनेक जन्म के दुःखों को प्राप्त होता है और जब आत्मा की ओर इसका प्रवाह होता है तब परमपद को प्राप्त होता है । इससे दृश्यभ्रम को त्यागके आत्मपद में स्थित करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे भार्गवोपाख्यानसमाप्तिवर्णनन्नाम विंशतितमस्सर्गः ॥२०॥

अनुक्रम

विज्ञानवाद

रामजी ने पूछा,हे भगवन्! सर्वधर्मों के वेत्ता! जैसे समुद्र में तरंग उपजके फैल जाता है तैसे ही मेरे हृदय में एक बड़ा संशय उत्पन्न होकर फैल गया है कि देश,काल और वस्तु के परिच्छेद से रहित नित्य,निर्मल, विस्तृत और निरामय आत्मसत्ता में मलीन संवित मन नामक कहाँ से आया और कैसे स्थित हुआ? जिससे भिन्न कुछ वस्तु नहीं और न आगे होगी उसमें कलंकता कहाँ से आई? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुमने भला प्रश्न किया । अब तुम्हारी बुद्धि मोक्षभागी हुई है जैसे नन्दनवन के कल्पवृक्ष में कल्पमञ्जरी लगती है तैसे ही तुम्हारी बुद्धि पूर्व अपर के विचार से जारी है । अब तुम उस पद को प्राप्त होगे जिस पद को शुक्र आदिक प्राप्त हुए हैं । तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धान्त काल में दूँगा और उस काल में तुमको आत्मपद हस्तामल कवत् भासेगा । हे रामजी! सिद्धान्त का प्रश्नोत्तर सिद्धान्तकाल में सोहता है और जिज्ञासु का प्रश्नोत्तर जिज्ञासुकाल में सोहता है । जैसे वर्षाकाल में मोर की वाणी शोभती है और शरद्काल में हंस की वाणी शोभती है और जैसे वर्षा काल के नष्ट हुए स्वाभाविक ही आकाश की नीलता भासती है और वर्षाकाल में मेघ की घटा शोभती है तैसे ही प्रश्नोत्तर भी हैं । जैसा समय हो तैसा ही शोभता है । हे रामजी! मैं तुमको मन का स्वरूप अनेक प्रकार के दृष्टांतों और युक्तियों से कहूँगा और जिस प्रकार यह निवृत्त होता है वह भी क्रम से बहुत प्रकार कहूँगा । मन की शान्ति के उपाय जो वेदों ने निर्णय किये हैं और शास्त्रकारों ने कहे हैं उनके लक्षण तुम सुनो । चञ्चल मन जैसा जैसा भाव अंगीकार करता है तैसा ही तैसा रूप होकर भासने लगता है । जैसे पवन जैसी सुगन्ध से मिलता है तैसा ही उसका स्वभाव हो जाता है और जैसे जल जिस रूप से मिलता है तैसा ही रूप हो भासता है तैसे ही मन जिस पदार्थ से मिलता है उसका रूप हो जाता है । मन से रहित जो शरीर से क्रिया करता है उसका फल कुछ नहीं होता और मनसे करता है उसका पूर्ण फल होता है । जिस ओर मन जाता है उसी ओर शरीर भी लग जाता है । बुद्धि इन्द्रिय जो मनरूप हैं वे यदि क्षोभ को प्राप्त हों और देह इन्द्रिय स्थिर हों तो भी कार्य होता है पर यदि मन क्षोभित न हो और कर्मेन्द्रि क्षोभित हों तो कार्य नहीं होता । जैसे धूल क्षोभायमान हो तो पवन बिना आकाश को उड़ नहीं सकती और पवन क्षोभायमान हो तो चाहे जैसी धूल स्थित हो उसको उड़ा ले जाती है, तैसे ही देह पड़ा रहता है मन अपने फुरने से स्वप्न में अनेक अवस्था को प्राप्त होता है और जाग्रत् में भी जिस ओर मन फुरता है देह को भी वहीं ले जाता है । इससे सब कार्यों का बीज मन ही है और मन से ही सब कर्म होते हैं । मन और कर्म परस्पर अभिन्नरूप हैं । जैसे फूल और सुगन्ध अभिन्नरूप हैं तैसे ही मन और कर्म हैं । जिस कर्म का अभ्यास मन में दृढ़ होता है उसी की शाखा फैलती है, उसी फल को प्राप्त होता है और उसी स्वाद का अनुभव करता है । जिस जिस भाव को चित्त ग्रहण करता है उसी उसी भाव को प्राप्त होता है और उसी को कल्पना मानता है । धर्म, अर्थ, काम मोक्ष ये चार पदार्थ हैं, उनमें जिसकी दृढ़ भावना मन करता है उसी को सिद्ध करता है। कपिलदेव ने सब शास्त्र अपने मन की सत्ता ही बनाये हैं । उसने निर्णय किया है कि प्रकृति अर्थात् माया के दो स्वभाव हैं–एक अनुलोम परिणाम और दूसरा प्रतिलोम परिणाम । जब प्रतिलोम परिणाम होता है तब दृश्यभाव प्राप्त होता है और अनुलोम परिणाम से अन्तर्मुख आत्मा की ओर आता है आत्मा शुद्धरूप है इससे आत्मा की ओर अनुलोम परिणाम ही मोक्ष का कारण है और कोई उपाय नहीं । वेदान्तवादियों ने यह निश्चय किया है कि यह ब्रह्म ही है । शम दम आदिक से जब मन सम्पन्न होता है तब यह निश्चय होता है कि सर्व ब्रह्म है । उनके चित्त में यही निश्चय है ब्रह्मज्ञान के सिवाय और किसी यत्न से मोक्ष नहीं होता । विज्ञानवादी कहते हैं कि जब तक बुद्धि फुरती है तब

तक संसार है और जब यह अपने स्वभाव में फुरती है तब उस काल में स्वरूप में स्थिति होती है । जब वह काल आवेगा तब मोक्ष की प्राप्ति होगी । अर्हन्तजी जो बड़े हैं उनको अपने निश्चयानुसार भासता है । मीमांसा, पातञ्जल, वैशैषिक और न्यायादिक शास्त्रकार अपनी–अपनीबुद्धि से जैसा–जैसा निश्चय धरते हैं तैसा ही तैसा उनको भासता है, स्वरूप में न कोई मत् है और न शास्त्र है । इसका कारण मन है, मन को ही अंगीकार करके सब मत डूबे हैं । न नींब कड़ुआ है, न मधु मीठा है, न अग्नि उष्ण है और न चन्द्रमा शीतल है, जैसा–जैसा जिसके मन में निश्चय होता है तैसा ही उसको भासता है । किसी को नींब प्यारी होती है और मधु कटु लगता है । नींब के कीट को मधु नहीं रुचता तो क्या मधु कटुक हो गया? विरहिणी स्त्री को चन्द्रमा अग्निवत् भासता है और चकोर अग्निको भक्षण कर लेता है । निदान जैसी–जैसी भावना पदार्थ में होती है तैसा ही तैसा हो भासता है । सब जगत् भावना–मात्र है, जिस पुरुष को दृश्य में भावना है वह अनेक दुःख और भ्रम देखता है और जिसको शम दमादिक साधन से अकृत्रिमपद की प्राप्ति होती है और मन तदाकार हुआ है वह शान्तिमान् होता है, दूसरा उस सुख को नहीं प्राप्त होता है । हे रामजी! यह जगत् दृश्य तुम्हारे मन के स्मरण में स्थित हुआ है तो तुच्छरूप है । इसको मन से त्याग करो । ये सुख–दुःख आदिक महाभ्रम देने वाले हैं और यह संसार अपवित्र और असत् तथा मोहरूप महाभय का कारण है । आभास मायामात्र और अविद्यारूप है । इसकी भावना भय का कारण है । सब जगत् के साथ संवित् की तन्मयता होती है तब उसका नाम कर्म बुद्धीश्वर कहते हैं । जब दृष्टा को दृश्य से संयोग होता है तब बड़े मोह को प्राप्त होता है, दृश्य से मिल के भ्रम अनात्म में आत्माभिमान करता है और देहादिक को अपना आप जानता है । संसाररूप मद से जीव उन्मत्त हो जाता है और स्वरूप की सँभाल इसको नहीं रहती–इसीका नाम अविद्या बुद्धीश्वर कहते हैं । जो दृश्य से मिला है उसका कल्याण नहीं होता और जिसके आगे मन का पटल है उसको स्वरूप का भान नहीं होता । जैसे सूर्य के आगे जब मेघ का आवरण आता है तब वह नहीं होता भासता तैसे ही मन के आवरण से आत्मा नहीं भासता । इससे मनरूपी आवरण को दूर करो । मन का रूप फुरना है, उसको संकल्प कहते हैं । जो–जो संकल्प फुरें उनको त्याग करो, असंकल्प होने से मन नष्ट हो जावेगा । हे रामजी! जब तुम सर्व भाव और सर्व पदार्थोंमें असंग होगे तब दृष्टा पुरुष प्रसन्न होगा और उससे तुमको निर्विकल्प चिदात्मा की प्राप्ति होगी जहाँ न जगत् की सत्ता हैं, न सुख है और न दुःख है केवल अद्वैत भाव है जो अपने आप में प्रकाशता है । जब संसार की भावना तुम्हारे हृदय से उठ जावेगी तब तुम निर्मल स्वरूप में स्थित होगे और तब दृश्यभ्रम निवृत्त हो जावेगा । जैसे रस्सी के सम्यक् ज्ञान से सर्पभ्रमनष्ट हो जाता है तैसे ही चिदात्मा के सम्यक्ज्ञान से जगद्भ्रम नष्ट हो जावेगा । इससे तुम दृश्यभावना को त्याग के चिदात्मा की भावना करो, जैसी भावना होती है तैसे ही भासता है । यदि प्रथम भावना को त्याग के और भावना करता है तो प्रथम का अभाव हो जाता है । जैसे दिन हुए से रात्रि का अभाव हो जाता है । जैसे दिन हुए से रात्रि का अभाव हो जाता है तैसे ही आत्मभावना से दृश्यभावना का अभाव हो जाता है । जैसे लोहे को लोहा काटता है तैसे ही भावना को भावना काटती है । इससे अतुच्छ निरुपाधि और निःसंशय पदका आश्रय करो । जब उसकी भावना दृढ़ होगी तब तुम भ्रम से रहित सिद्धपद को प्राप्त होगे ।हे रामजी! तुम्हारा आत्मस्वरूप है, तुम बुद्धि आदिक की कल्पना मत करो । जैसे बालक से कहिये कि शून्य में सिंह है तो वह भयवान् होता है तैसे ही जब शून्य शरीरादिकों में विचार से बुद्धिनहीं आती और 'यह मैं हूँ, 'यह और है' इत्यादिक जो कल्पना होती हैं सो ऐसी हैं जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल कल्पना होती है । जो कि अपनी कल्पना के वश से भाव, अभाव, शुभ, अशुभ क्षण क्षण में प्राप्त होते हैं । और कोई सत्रूप, कोई असत्रूप भासते हैं । जैसे

जैसी भावना होती है तैसा ही तैसा भासता है, पर स्त्री में जब कामबुद्धि होती है तब स्पर्श से स्त्रीवत् आनन्ददायक होती है और जो स्त्री में माता की भावना करता है तो उससे कामबुद्धि जाती रहती है । इससे देखो जैसी जैसी भावना होती है तैसा ही तैसा हो भासता है । भावना के अनुसार फल होता है और तत्काल उसी आकार को देखता है ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो सत् नहीं और ऐसा कोई नहीं जो असत् नहीं । जैसा जैसा किसी ने निर्णय किया है तैसा ही तैसा उसको भासता है । इससे इस संसार की भावना को त्याग के स्वरूप में स्थित हो । हे रामजी! मणि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसको मणि दूर नहीं कर सकती पर तुम तो मणिवत् जड़ नहीं हो, तुम चैतन्यरुप आत्मा हो, तुम्हारे में जो दृश्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है तुम उसको त्याग करो । जो संकल्प दृश्य का उठे उसको असत्‌रूप उसको असत्‌रूप जान के त्याग दो और प्रकृत व्यवहार जो प्राप्त हों उनको करो और मणि की नाईं भीतर से रञ्चित से रहित हो रहो । जैसे मणि में प्रतिबिम्ब वहिर्दृष्टि आता है और भीतर रंग नहीं चढ़ता तैसे ही वहिर्दृष्टि व्यवहार तुम्हारे में भासे, पर हृदय में राग–द्वेष स्पर्श न करे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितप्र० विज्ञानवादोनामैकविंशतितमस्सर्गः ॥२१॥

अनुक्रम

अनुत्तमविश्रामवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब जीव को सन्तों के संग ओर सत्शास्त्रों के विचार से विचार उपजता है तब दूसरी ओर से वृत्ति निवृत्त होती है और संसार का मनन भी निवृत्त हो जाता है तब विवेकरूपी बुद्धि उदय होती है और संसार (दृश्य) में त्याग बुद्धि होती है । तथा दृष्टा आत्मा में अंगीकार बुद्धि होता है । दृष्टा पुरुष प्रकट होता है और दृश्य अदृश्यता को प्राप्त होता है अर्थात् दृष्टा के लक्ष्य से दृश्य को असत्रूप जानता है । जब यह पुरुष ज्ञात ज्ञेय होता है तब परमतत्त्व में जागता है और संसार की ओर से धन सुषुप्ति, मृतक की नाईं हो जाता है और संसार की ओर से वैराग्य, भोग में अभोग और रस में निरसबुद्धि उपजती है । जब ऐसी बुद्धि होती है तब मन अपनी सत्ता को त्यागकर आत्म रूप होता है । जैसे बरफ का पुतला सूर्य के तेज से जलरूप हो जाता है तैसे ही जब मन में संसार की सत्यता होती है तब उस फुरने से जड़ हो जाता है जब विवेकरूपी सूर्य उदय होता है तब मन गलके आत्म–रूप हो जाता है जैसे जब तक मरुस्थल में धूप होती है तब तक वहाँ से मृगतृष्णा की नदी नष्ट नहीं होती और जब वर्षा होती है तब नष्ट हो जाती है तैसे ही जब तक संसार की सत्यता होती तब तक मन नष्ट होता और जब ज्ञान की वर्षा होती है तब दृश्यसहित मन नष्ट हो जाता है । हे रामजी! संसाररूपी वासना के जाल में जीवरूपी पक्षी फँसे हैं, जब वैराग्यरूपी चूहा इसको कतरे तब जीव निर्बन्ध हो । जैसे मलीन जल निर्मल होता है तैसे ही वैराग्य के वश से जीव का स्वभाव निर्मल हो जाता है । जब जीव निराग निरुपाधि के संग और राग द्वेष और मोह से रहित होता है तब जैसे पिंजरे के टूटे पक्षी निर्बन्ध हो जाता है, सन्देह दुर्मति शान्त हो जाती है । जगत् भ्रम नष्ट होजाता है और हृदय पूर्ण हो जाता है । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा होता है तैसे ही ज्ञानवान् शोभता है सबसे उत्तम सौन्दर्यता को प्राप्त होता है और उसका उदय अस्त राग द्वेष नष्ट हो जाता है, सर्व समताभाव वर्त्तता है और न्यूनता और विशेषताभाव नष्ट हो जाता है । जैसे पवन से रहित सोमसमुद्र अचल होता है तैसे ही असंग पुर मूक जड़ अन्धकर्म की वासना से रहित अचल हो जाता है और वह सब चेतन प्रकाश देखता है, उसकी बुद्धि विवेक से प्रफुल्लित हो जाती है । जैसे सूर्य के उदय हुए सूर्यमुखी कमल प्रफुल्लित हो आते हैं तैसे ही वह पुरुष पूर्णिमा के चन्द्रमावत् दैवी गुणों से शोभता है । बहुत कहने से क्या है ज्ञात ज्ञेय पुरुष आकाशवत् हो जाता है,वह न उदय होता है और न अस्त होता है । विचार करके जिसने आत्मतत्त्व को जाना है वह उस पद को प्राप्त होते हैं जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र स्थित हैं और सब ही उस पर प्रसन्न होते हैं । प्रकट आकार उसका भासता है पर हृदय अहंकार से रहित है और विकल्पके समूह उसको नहीं खींच सकते–जैसे जल के अभाव जाननेवाले को मृगतृष्णा की नदी खींच सकती । हे रामजी! आविर्भाव और तिरोभाव रूप जो संसार है उसको रमणीयरूप जान के ज्ञानवान् खेद नहीं पाता, देह के नाश में वह अपना नाश नहीं मानता और उपजने में उपजना नहीं मानता । जैसे घट उपजे से आकाश नहीं उपजता, क्योंकि आगे सिद्ध है और घट के अभाव से आकाश का अभाव नहीं होता, तैसे ही देह के उपजे से आत्मा नहीं उपजता और देह के नष्ट हुए नष्ट नहीं होता । जब ऐसा विवेक उदय होता है तब वासना–जाल नष्ट हो जाता है और कोई भ्रम नही रहता । जैसे मृगतृष्णा की नदी का ज्ञान से अभाव हो जाता है जब तक जीव को यह विचार नहीं उपजता कि मैं कौन हूँ और जगत क्या है, तब तक संसाररूपी अन्धकार रहता है । जो पुरुष ऐसे जानता है कि संसार भ्रम मिथ्या उदय हुआ है और परम आपदा का कारण देह अनात्मरूप है, आत्मा से यह जगत् भिन्न नहीं और सब आत्मसत्ता करके स्थित है वही पदार्थ देखता है । सब चैतन्यसत्ता है, मैं अनन्त चिदाकाशरूप हूँ और देश, काल, वस्तु के परिच्छेद से रहित हूँ । और

आधि , व्याधि, भय, उद्वेग, जरा–मरण, जन्म आदिक संयुक्त मैं नहीं, ऐसे जो देखता है, वही पदार्थ देखता है । बाल के अग्र का लक्षभाग करिये और फिर एक भाग के कोटिभाग करिये ऐसा सूक्ष्म सर्वव्यापी है, ऐसे जो देखता है, वही यथार्थ देखता है । मैं सर्वशक्ति मान् अनन्त आत्मा हूँ, सर्वपदार्थों में स्थित और अद्वैत चिदादित्य हूँ, ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है । अधः ऊर्ध्व मध्य और सब में मैं व्यापा हूँ, मुझसे भिन्न द्वैत कुछ नहीं, ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है जैसे तागे में माला के दाने पिरोये होते है तैसे ही सब मुझमें पिरोये हैं, ऐसे जो देखता है वही यथार्थ देखता है । न मैं हूँ न यह जगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, सत् असत् के मध्य में जो एक देव प्रकाशक है और त्रिलोकी में जो एक है वही मैं एक अविनाशी पुरुष हूँ । जैसे समुद्र में तरंग फुरते हैं और लीन हो जाते हैं तैसे ही मेरे में जगत् फुरते हैं और लीन होते हैं । अथवा प्रथम अहं है, तब दृश्य जगत् होता है, सो न मैं हूँ, न जगत् है, केवल एक आत्मसत्ता है । अहं और मम उसमें कोई नहीं, ऐसे जो देखता है सो यथार्थ देखता है । दृश्य से रहित मैं चैतन्यरूप भाव अपार हूँ और मैं ही जगत्जाल को पूर्ण कर रहा हूँ । जो पुरुष ज्ञानवान् हैं वे सुख–दुःख और भाव अभाव में चलायमान नहीं होते वे केवल ब्रह्मरूप में स्थित हैं और जगत् के भाव–अभाव से रहित अनाभाव सन्मात्ररूप है । जो हेयोपादेयबुद्धि से रहित आकाशवत् सर्वात्मभाव में स्थित हुआ है उसको जगत् का कोई पदार्थ अपने वश नहीं कर सकता, वह महात्मा पुरुष महेश्वर, तमप्रकाश से रहित, सब कल्पनाओंसे मुक्त, सम और स्वच्छरूप है और उदय अस्ति से रहित समवृक्ष है । जो ऐसी परमबोध अनन्त सत्ता में स्थित है उसको मेरा नमस्कार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे अनुत्तमविश्रामवर्णनन्नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः ॥२२॥

अनुक्रम

शरीरनगर वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिसने उत्तम पद का आश्रय किया है ऐसे जीवन्मुक्त पुरुष का कुम्हार के चक्र की नाईं प्रारब्ध शेष रहा है । वह पुरुष शरीररूपी नगर में राज्य करता है और लेपायमान नहीं होता । उसको भोग और मोक्ष दोनों सिद्ध होते हैं । जैसे इन्द्र का वन सुखरूप है तैसे ही उसका शरीररूपी नगर सुखरूप होता है । शरीर के सुख से वह सुखी नहीं होता और दुःख से दुःखी नहीं होता, अपने स्वरूप में स्थित रहता है । रामजी ने पूछा, हे मुनीश्वर! शरीररूपी नगर कैसा है, उसमें रहके योगिराज क्या करता है और सुख कैसे भोगता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! ज्ञानी का शरीररूपी नगर रमणीय होता है और सर्वगुणसंयुक्त ज्ञानवानों को अनन्त आनन्द विलास दिखाता है, जैसे सूर्य प्रकाश को उदय करता है । उस शरीररूपी नगर में गाँठें ईंटें हैं, रुधिर और माँस गारा है, अस्थि थम्भ हैं, किवाड़ पटहैं, रोम वनस्पति हैं, उदर खाई है, छाती चाक है नव द्वार हैं और उनमें नेत्र झरोखे हैं, उन द्वारों से त्रिलोकी का प्रकाश होता है , हाथ गली हैं, जिनसे लेता देता है, मुख बड़ी कन्दरा है, ग्रीवा और शीश बड़े मन्दिर हैं और रेखा माला है जो भिन्न भिन्न लगी हुई हैं, नाड़ी विभाग करने के स्थान हैं और प्राणवायु आदिक से नाड़ी में जीव विचरते हैं, चिन्तामणिरूपी आत्मा में श्रेष्ठ बुद्धिरूपी स्त्री रहती है जिसने इन्द्रियरूपी वानर बाँध रक्खे हैं, और जिसके हास्य में महासुन्दर फूल हैं । ऐसा शरीररूपी पुर ज्ञानवान् को महासुखका निमित्त है और सौभाग्य सुन्दररूप है । उस शरीर के सुख दुःख से ज्ञानवान् सुखी दुःखी नहीं होता । हे रामजी! जो अज्ञानी हैं उनको शरीररूपी नगर अनन्त दुःख का भण्डार है, क्योंकि अज्ञान से वे शरीर के नष्ट हुए आपको नष्ट हुआ मानते हैं और ज्ञानवान् इसके नाश हुए अपना नाश नहीं मानते । वे जब तक रहते हैं तब तक शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इनको ग्रहण करते हैं, वे इष्टरूप होके भासते हैं और शरीररूपी नगर में भ्रम से रहित निष्कण्टक राज्य करते हैं । वे लोभ से रहित हैं, इस कारण शत्रु कुछ नहीं लेते और उनको अपने स्थान में आने नहीं देते । वे शत्रु काम, क्रोध, मान, मोहादिक अज्ञान रूप हैं, उनमें वे आप प्रवेश नहीं करते और अपने देश में उनको आने नहीं देते, सावधान ही रहते हैं । उनके देश, उदारता, धीरज, सन्तोष, वैराग्य, समता, मित्रता, मुदिता और उपेक्षा हैं, उनमें अज्ञान नहीं प्रवेश करने पाता और आप ध्यानरूपी नगर में रहता है, सत्यता और एकता दोनों स्त्रियों को साथ रखता है और उनसे सदा शोभायमान रहता है जैसे चन्द्रमा चित्रा और विशाखा दोनों स्त्रियों से शोभता है तैसे ही ज्ञानवान् सत्यता और एकता से शोभता है । वह मनरूपी घोड़े पर आरूढ़ होके और विचाररूपी लगाम उसके लगाकर जीव ब्रह्म की एकतारूपी संगम तीर्थ में स्नान करने जाता है जिससे सदा आनन्दवान रहता है और भोग और मोक्ष दोनों से सम्पन्न होता है । जैसे इन्द्र अपने पुर में शोभता है तैसे ही ज्ञानवान् देह में शोभता है और जैसे घट के फूटे से आकाश की कुछ न्यूनता नहीं होती तैसे ही देह के नाश हुए ज्ञानी की कुछ हानि नहीं होती वह ज्यों का त्यों ही रहता है । यद्यपि उसके देह होती है तो भी वह उससे स्पर्श नहीं करता– जैसे घट से आकाश स्पर्श नहीं करता और सब क्रिया को करता भोक्ता है, परन्तु किसी में लिप्त नहीं होता सदा एक रस भगवान आत्मदेव में रहता है । जब वह विमान पर आरुढ़ होके शरीररूपी नगर में विचरता है तब मैत्रीरूपी नेत्रों से सबको देखता है, मैत्रीभाव उसमें सदा रहता है और सत्यता और एकता सदा उसके पास है उससे शोभता है और सदा आनन्दवान् विचरता है । वह जीवों को दुःखरूपी आरे से कटते देखता है जैसे कोई पहाड़ पर चढ़के पृथ्वी में लोगों को जलता देखे और आप आनन्दवान् हो, जैसे वह ज्ञानवान् जीवों को दुःखी देखता है । और आप आनन्दवान् है । उसकी दृष्टि में तो सदा अद्वैतरुप है और आत्मानन्द की अपेक्षा से अनात्म धर्म

को दुःखी देखता है, उसके निश्चय में जगत् जीव कोई नहीं और वह चारों प्रयोजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्णता को प्राप्त होता है । किसी ओर से उसको न्यूनता नहीं, वह सर्व सम्पदा सम्पन्न विराजमान होता है । जैसे पूर्ण–मासी का चन्द्रमा न्यूनता से रहित विराजता है तैसे ही यद्यपि वह भोगों को सेवता है तो भी उसको वे दुःखदायक नहीं होते । जैसे कालकूट विष को सदा शिव ने पान किया था परन्तु उनको वह दुःखदायक न हुआ, तैसे ही वह भी समर्थ है । जैसे चोर को जानके जब उसे अपने वशवर्ती किया तब मित्रभाव हो जाता है तैसे ही भोग उसको दुःख नहीं देते । जब जीव भोगों को जानता है कि ये कुछ वस्तु नहीं हैं तब वे सुख के कारण होते हैं और जब तक इनको सत्त जानके आसक्त होता है तब तक दुःख के कारण होते हैं । हे रामजी! जैसे यात्रा में अनेक स्त्री पुरुष मिलते हैं और परस्पर इक`े बैठते और चलते फिरते हैं परन्तु आपस में आसक्त नहीं होते– आगे पीछे चले जाते हैं– तैसे ही ज्ञानवान् संसार के पदार्थों में चित्त को नहीं लगाते । जैसे कोई कासिद किसी देश में जाता है और मार्ग में कोई सुन्दर रमणीय स्थान दृष्टि आते और कोई मलीन कष्ट के स्थान भासते हैं परन्तु वह राग–द्वेष किसी में नहीं करता जैसे तैसे देखता चला जाता है, तैसे ही ज्ञानवान् भोगक्रिया में राग–द्वेष से बन्धवान् नहीं होता । उसके सर्वसंशय सम्यक्ज्ञान से शान्त हो जाते हैं, कोई आश्चर्य पदार्थ उसको नहीं दिखाई देते, उसके वासना के समूह नष्ट हो जाते हैं, चक्रवर्ती राजा की नाईं शोभता है और परिपूर्ण होके स्थित होता है । जैसे क्षीर समुद्र अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता तैसे ही ज्ञानी अपने आपमें पूर्ण नहीं समाता । हे रामजी! इन जीवों को भोग की इच्छा ही दीन करती है जिससे वे आत्मपद से गिरते हैं और अनात्म में प्राप्त हो कृपण हो जाते हैं । उनको देखके उत्तम आत्मपद आलम्बी हँसते हैं कि ये मिथ्या दीनभाव को प्राप्त हुए हैं । जैसे कोई स्वामी होकर स्त्री के वश हो और स्त्री स्वामी की नाईं हो तो उसको देखके लोग हँसते हैं, तैसे ही ज्ञानवान् भोग की तृष्णावाले को दीन देखके हँसते हैं चञ्चल मन ही परम सिद्धान्त सुख से जीवों को गिराता है, इससे तुम मनरूपी हस्ती को बिचाररूपी कुन्दे से वश करो तब सिद्धपद को प्राप्त होगे । जिसका मन विषयों की ओर धावता है वह संसार रूपी विष का बीज बोता है, इससे प्रथम इस मन को ताड़न करो तब शान्ति को प्राप्त होगे । जो मानी होता है और कोई उसका मान करता है तो वह उपकार कुछ नहीं मानता पर जब प्रथम उसको ताड़न करके थोड़े ही उपकार किये से प्रसन्न होता है । जैसे धान्य जल से पूर्ण होते हैं तब जल के सींचने से उनमें उपकार नहीं होता और जो ज्येष्ठ आषाढ़ की धूप से तप्त होते हैं तो थोड़ा जल सींचने से भी उनको अमृतवत् होता है, तैसे ही जो प्रथम मन का सन्मान करिये तो मित्रभाव नहीं होता और यदि ताड़न करके पीछे सन्मान कीजिये तो उपकार मानके मित्र भाव रक्खेगा । ताड़न करना विषय से संयम करना है जब संयम करके निर्वाण हो तब यह सन्मान करना चाहिये कि संसार के पदार्थों में बर्त्तना । तब वह शत्रुभाव को त्याग के मित्र हो जाता है, जैसे वर्षाकाल में जब नदी जल से पूर्ण होती है तब उसमें जल का उपकार नहीं होता पर शरद्काल में जल का उपकार होता है । जैसे राजा को और देश का राज्य प्राप्त हो तो वह कुछ प्रसन्न नहीं होता पर यदि प्रथम उसे बन्दीखाने में डालिये और फिर थोड़े ग्राम दीजिये तो उससे प्रसन्नहोतअ है, तैसे ही जब प्रथम मन को ताड़न कीजिये तब थोड़े सन्मान से भी सुखदायक होता है । इससे तुम हाथ से हाथ दबाके, दाँतों से दाँत मिलाके और अंग से अंग रोक के इन्द्रियों को जीत लो । मनुष्य के हृदय में मनरूपी सर्प कुण्डल मारके बैठा है और कल्परूपी विष से पूर्ण है । जिसने उसका मर्दन किया है उसको मेरा नमस्कार है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे शरीरनगर वर्णनन्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥२३॥

अनुक्रम

मनस्विसत्यताप्रतिपादन

वसिष्ठजी बोले कि हे रामजी! अज्ञानी जीव महानरक को प्राप्त होता है । आशारूपी बाण की शलाका उसको लगी है और इन्द्रियरूपी शत्रु मारते हैं इन्द्रियाँ दुष्ट बड़ी कृतघ्न हैं, जिस देह के आश्रय रहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्ण करती हैं । ये महादुष्ट और दुःखदायक भण्डार हैं, इनको तुम जीतो । इन्द्रियाँ और मनरूपी चील पक्षी हैं, जब इनको विषय भोग नहीं होते तब ऊर्ध्व को उड़ते हैं और जब विषय प्राप्त होते हैं तब नीचे को आ गिरते हैं । जिस पुरुष ने विवेकरूपी जाल से इनको बाँधा है उसको ये भोजन नहीं कर सकते जैसे–पाषाण के कमल को हाथी भोजन नहीं कर सकता । हे राम जी! ये भोग आपातरमणीय और अत्यन्त विरस हैं, जो पुरुष इनमें रमण करता है वह नरक को प्राप्त होगा और जो पुरुष ज्ञान के धन से सम्पन्न है और देहरूपी देश में रहता है वह परम शोभा पाता है और आनन्दवान् होता है, क्योंकि बड़े ऐश्वर्य से उसने इन्द्रिय रूपी शत्रु जीते हैं । हे रामजी! सुवर्ण के मन्दिर में रहने से ऐसा सुख नहीं मिलता जैसा निर्वासनिक ज्ञानवान् को होता है । जिस पुरुष ने इन्द्रियों और असत्‌रूपी शत्रु को जीता है वह परम शोभा से शोभता है–जैसे हिमऋतु को जीतके वसन्तऋतु में मञ्जरी शोभती हैं । जिस पुरुष के चित्त का गर्व नष्ट हुआ है और जिसने इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं उसकी भोग वासना नष्ट हो जाती हैं–जैसे शीतकाल में पद्मिनियाँ नष्ट हो जाती हैं । हे रामजी! वासनारूपी वैताल निशाचर तब तक विचरते हैं जब तक एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करके मन को नहीं जीतते, जब विवेक–रूपी सूर्य उदय होता है तब अन्धकार नष्ट हो जाता है । जब विवेक से मनुष्य मन को वश करता है तब इन्द्रियाँ भृत्य (टहलुये) हो जाती हैं, मन रूपी सब मित्र हो जाते हैं और आप राजा होके स्वरूपराज को भोगता है । हे रामजी! विवेक की इन्द्रियाँ पतिव्रता स्त्रीवत् हो जाती हैं मन माता की नाईं पालना करने वाला होता है और चित्त सुहृद हो जाता है । जब निश्चयवान् पुरुष सत्शास्त्र को विचारता है तब परम सिद्धान्त को प्राप्त होता है और मन अपने मननभाव को त्याग के शान्तरूप पितावत् प्रतिपालक हो जाता है । इससे तुम मन को विवेक से वश करो । मनरूपी मनि को आत्मविचार शिला से घिसो, विराग–जल से उज्ज्वल करो अभ्यासरूपी छेद करके विवेक रूपी तागे से पिरोय कण्ठ में पहिनो तो शोभा देती है । जन्मरूपी वृक्ष को विवेकरूपी कुल्हाड़ा काट डालता है और मनरूपी शत्रु को विवेकरूपी मित्र नष्ट करता है और सदा शुभकर्म कराता है और विषय के परिणामिक दुःख को निकट नहीं आने देता । इससे मन को वश करना ही आनन्द का कारण है । जब तक मन वश नहीं होता तब तक दुःख देता है और जबवश होता हे तब सुखदायक होता है । हे रामजी! मन रूपी मणि भोग की तृष्णा से कलंकित हुई है, जब जब विवेकरूपी जल से इसको शुद्ध करे तब शोभायमान होगी । यह संसार महाभय का देनेवाला है । अल्प विवेकवान् पुरुष भी मायारूपी संसार में गिर पड़ते हैं, तुम और जीवों की नाईं इसमें मत गिरो । यह संसार मायारूप है और अनेक अर्थों की जंजीर संयुक्त है महामोहरूपी कुहिरे से जीव अन्धे हो गये हैं, इससे तुम विवेकपद का आश्रय करके बोध से सत् का अवलोकन करो और इन्द्रियों से वेरागरूपी नौका से संसारसमुद्र को तर जाओ । शरीर भी असत् है और इसमें सुख और दुःख भी असत् हैं । तुम दाम, ब्याल, और कट की नाईं मत हो, पर भीम, भास और दट की स्थिति को ग्रहण करके विशोक हो । 'अहं' ममादिक' निश्चय वृथा है, उसको त्याग के तत्पद का आश्रय करो । चलते, बैठते, खाते, पीते मन में मनन का अभाव हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थिति प्रकरणे मनस्विसत्यताप्रतिपादनन्नाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥२४॥

अनुक्रम

दामब्यालकटोत्पत्ति वर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आप संसार के दूर करनेवाले हैं यह आपने क्या कहा? इसको खोलकर कहो कि दाम, ब्याल और कट की नाईं कैसे और भीम, भास, दट की स्थिति कैसे हैं? जैसे वर्षाकाल के मेघ पन को दूर करते हैं और मोर को शब्द करके जगाते हैं तैसे ही तुम अपनी कृपा से जगावो । वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! प्रथम इसकी नाईं स्थित हो, पीछे जो इष्ट हो उसमें विचरना । पाताल में सम्बरनाम का एक दैत्य राजा मायावी और सर्व आश्चर्यरूप मन के मोहनेवाला था । उस दैत्य ने अपनी माया से आकाश में एक नगर रचा और उसमें बाग, दैत्यों के मन्दिर, सूर्य, चन्द्रमा और अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न दैत्यों और रत्नों की स्त्रियाँ रचीं, जो गान करतीं थीं और जिन्होंने देवताओं की स्त्रियाँ भी जीतीं। उसने वृक्ष बनाये जिनमें चन्द्रवत् फल लगे और श्वेत पीत रत्नों की कमलिनी और सुवर्ण के हंस, सारस और कमल सुवर्ण के वृक्षों की बड़ी शाखों पर बैठै हुए बनाये और कञ्ज के वृक्ष जिनमें कमल वृक्ष के फूल लगाये और रत्नों से जड़े हुए सुन्दर स्थान, बरफ की नाईं शीतल बगीचे, वनस्थान चन्दन के रचे । इन्द्र का नन्दन वन किन्तु उससे विशेष और सर्वऋतु के फूल लगाये, उनमें देत्यों की स्त्रियाँ क्रीड़ा करती थीं और बड़े ऐश्वर्य रचे थे । विष्णु और सदाशिव के सदृश ऐश्वर्यसंयुक्त उसने अपना नगर किया और बड़े प्रकाश संयुक्त रत्नों के तारागण रचे । जब रात्रि हो तब वे चन्द्रमा के साथ उदय हों पुतलियाँ गान करें । माया के हाथी ऐसे रचे जो इन्द्र के ऐरावत को जीत लेवें । इसी प्रकार त्रिलोकी की विभूति से उत्तम विभूति उसने रची और भीतर बाहर सर्व सम्पदाओं से पूर्ण किया । सब दैत्य मणडलेश्वर वन्दना करते थे, आप सब दैत्यों का राजा शासन करने वाला हुआ और सब उसकी आज्ञा में चलते थे । बड़ी भुजावाले दैत्य उस नगर में विश्राम करते थे । निदान जब सम्बर दैत्य शयन करे अथवा देशान्तर में जाय तब अवकाश देखके देवताओं के नायक उसकी सेना को मार जावें और नगर लूट ले जावें । तब सम्बर ने रक्षा करनेवाले सेनापति रचे, पर समय देखके देवता उनको भी मार गये । सम्बर ने यह सुनके बड़ा कोप किया और जी से ठाना कि इनको मारूँ । ऐसे विचार के वह अमरपुरी पर चढ़ गया और देवता भयभीत होके सुमेरु पर्वत में भवानी शंकर के पास अथवा वन कुञ्ज और समुद्र में जा छिपे । जैसे प्रलयकाल में सब दिशाएँ शून्य हो गया । तब दैत्यराज अमरपुरी को शून्य देख के और भी कोपवान् हुआ और उसमें अग्निजलाकर लोकपालों के सब पुर जला दिये और देवताओं को ढूँढ़ता रहा परन्तु वे कहीं न दीखे–जैसे पापी पुण्य को देखे और वे कहीं दृष्ट न आवें तैसे ही देवता कहीं दृष्ट न आये । तब सम्बर ने कुपित होके ऐसे बड़े बली तीन राक्षस सेना की रक्षा के निमित्त माया से रचे कि वे मानो काल की मूर्ति थे और उनके बड़े आकार ऐसे हिलते थे मानो पंखों से संयुक्त पर्वत हिलते हैं–उन्हीं के नाम, दाम, व्याल, कट हैं वे अपने हाथों में कल्पवृक्ष की नाईं बड़े–बड़े शस्त्र और भुजा लिये यथा प्राप्त कर्म में लगे रहें । उनको धर्म और कर्म का अभाव था, क्योंकि पूर्व वासना कर्म उनको न था और निर्विकल्प चिन्मात्र उनका स्वरूप था। वे अपने स्थूल शरीर के स्वभावसत्ता में स्थित न थे और अनात्मभाव को भी नहीं प्राप्त भये थे । एक स्पन्दमात्र कर्मरूप चेतना उनमें थी । वही कर्म का बीज चित्तकलना स्पन्दरूप हुई थी । वे मननात्मक शस्त्र प्रहार को रचे थे और उसी को करते, परन्तु हृदय में स्पष्टवासना उनको कोई न फुरती थी केवल अवकाशमात्र स्वभाव से उनकी क्रिया हो । जैसे अर्धसुषुप्त बालक अपने अंग को स्वा भाविक हिलाता है तैसे ही वह वासना बिना चेष्टा करें । वे गिरना और गिराना कुछ न जानते थे और न यही जानते थे कि हम किसी को मारते हैं अथवा हमीं मरते हैं । वे न भागना जानें और न जानें कि हम जीते हैं व मरते हैं । जीत–हार को वे कुछ न जानें केवल शस्त्र का प्रहार करें । जैसे यन्त्री की

पुतली तागे से चेष्टा बिना संवेदन कर ती है तैसे ही दाम, ब्याल और कट चेष्टा करें। वे ऐसे महाबली थे कि जिनके प्रहार से पहाड़ भी चूर्ण हो जावें। उनको देख के सम्बर प्रसन्न हुआ कि सेनाकी रक्षा को बड़े बली हैं और इनका नाश भी उनसे न होगा, क्योंकि इनको इष्ट–अनिष्ट कुछ नहीं है जिनको इष्ट–अनिष्टका ज्ञान और वासना नहीं है उनका नाश कैसे हो और वे कैसे भागें। जैसे देवता के हाथी बड़े बली होके भी सुमेरु को नहीं उखाड़ सकते तेसे ही देवता बड़े बली भी हैं परन्तु इनको न मार सकेंगे। ये बड़े बली रक्षक हैं।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामब्यालकटोत्पत्ति वर्णनन्नाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः ॥२५॥

अनुक्रम

दामव्यालकटकसंग्रामवर्णन

वशिष्ठजी बोले कि हे रामजी । इस प्रकार जब निर्णय करके सम्बर ने दाम, ब्याल, कट स्थापन किये तो जब देवताओं की सेना भूतल में आती थी और सम्बर चढ़ता था तब वे भाग जाते थे । निदान सम्बर की सेना को देखके देवता भी समुद्र और पहाड़ से उछल के निकल दोनों बड़ी सेना सहित युद्ध करने लगे । जैसे प्रलयकाल के समुद्र क्षोभते हैं और सब जलमय होजाता है तैसे ही देवता और दैत्य सब ओर से पूर्ण हो गये और बड़े बाणोंसे युद्ध करने लगे । शंखध्वनि करके जो शस्त्र चलते थे उनसे शब्द हों और अग्नि निकले और तारों की नाईं चमत्कार हो । शरीरों से शिर कटें और धड़ काँप-काँप के गिर पड़े और दोनों ओर से शस्त्र चलें पर दाम, व्याल, कट न भागें, मारते ही जावें, जिनके प्रहार से पहाड़ चूर्ण हों सब दिशाओं में शस्त्र पूर्ण हो गये और रुधिर के ऐसे प्रवाह चले कि उनमें देवता दैत्य मरे हुए बहते जावें और महाप्रलय की नाईं भय उदय हुआ । एक एक अस्त्र ऐसा चले जिससे शस्त्रों की नदियाँ निकल पड़ें । कोई अग्निरूप , कोई तमरूप अस्त्र चलावे, दूसरे प्रकाशरूप, कोई निद्रारूप, कोई प्रबोधरूप, कोई सर्परूप और कोई गरुड़रूप अस्त्र चलावें । इस प्रकार वे परस्पर युद्ध करें और ब्रह्मास्त्र चलावें और शिला की वर्षा करें । सब पृथ्वी रक्त और माँस से पूर्ण हो गई और अनेक जीवों के धड़ और शीश गिर पड़े जैसे वृक्ष से फल गिरते हैं तैसे ही देवता और दैत्य गिरे और बड़ा घोर युद्ध हुआ । बहुत से गन्धर्व, किन्नर और देवता नष्ट हुए और दैत्य भी बहुत मारे गये परन्तु दैत्यों की ही कुछ जीत रही । इस प्रकार मायावी सम्बर की सेना और देवताओं का युद्ध हुआ । जैसे वर्षा काल में आकाश में मेघ घटा पूर्ण हो जाती है तैसे ही देवता और दैत्यों की सेना इक ी हो गई और दिशा विदिशा सब स्थान पूर्ण हो गये ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितप्रकरणे दामव्यालकटकसंग्रामवर्णनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः ॥२६॥

अनुक्रम

दामोपाख्यान ब्रह्मवाक्य वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार घोर संग्राम हुआ कि देवता और दैत्यों के शरीर ऐसे गिरे जैसे पंख टूटे से पर्वत गिरते हैं । रुधिर के प्रवाह चलते थे और बड़े शब्द होते थे जिससे आकाश और पृथ्वी पूर्ण हो गई । दाम ने देवताओं के समूहों को घेर लिया और व्याल ने पकड़ के पहाड़ में पीस डाला । कट ने देवताओं के समूह चूर्ण किये उनके स्थान तोड़ डाले और बड़ा क्रूर संग्राम किया । देवताओं का हाथी जो मद से मस्त था वह ताड़ने से क्षीण हो गया तो वहाँ से भयभीत होकर भागा और देवता भी भागे । जैसे मध्याह्न के सूर्य का बड़ा प्रकाश होता है तैसे ही दैत्य प्रकाशवान् हुए और जैसे बाँध के टूटने से जल का प्रवाह तीक्ष्ण वेग से चलता है तैसे ही देवता तीक्ष्ण वेग से भागे । जल के प्रवाहवत् मर्यादा छूट गई और दाम, व्याल, कट की सेना जीत गई । तब तो वे देवताओं के पीछे लग के मारते जावें । निदान जैसे काष्ठ से रहित अग्नि अन्त र्धान हो जाती है तैसे ही बलवान् देवता बल से हीन होकर अन्तर्धान हो गये और दैत्य उनको ढूँढ़ते फिरें, परन्तु जैसे जाल से निकले पक्षी और बन्धन से छूटे मृग नहीं आते तैसे ही देवता भी हाथ न आये तब दाम, व्याल कट तीनों सेना सहित पाताल में अपने स्वामी सम्बर के पास उसकी प्रसन्नता के लिये आये । जब देवताओं ने सुना कि दैत्य पाताल में गये हैं तब वे विचार करने लगे कि किसी प्रकार इससे ईश्वर हमारी रक्षा करे । ऐसी चिन्ता से आतुर हुए देवताओं को देख ब्रह्माजी जिनका अमित तेज है और सुन्दर रक्त पहिने हैं देवताओं के निकट आये और जैसे संध्याकाल में रक्तवर्ण बादल में चन्द्रमा शोभता है तैसे ही प्रकाशवान् ब्रह्माजी को देखके इन्द्रादिक देवताओं ने प्रणाम किया और सम्बर दैत्य की शत्रुता से कहा कि हे त्रिलोकी के ईश्वर! हम आपकी शरण आये हैं, हमारी रक्षा करो । सम्बर दैत्य ने हमको बहुत दुःख दिया है और उसके सेनापति दाम, व्याल, कट जो बड़े दैत्य हैं किसी प्रकार हमसे नहीं मारे जाते । उन्होंने हमारी सेना बहुत चूर्ण की है इस निमित्त आप इनके मारने का उपाय हमसे कहिये । तब संपूर्ण जगत् पर दया करनेवाले ब्रह्माजी ने शान्ति के कारण वचन कहे । हे अमरेश! ये दैत्य अभी तो नष्ट न होंगे, जब इनको अहंकार उपजेगा तब ये मरेंगे और तुमही इनको जीतोगे । मैंने इनकी भविष्यत् देखी है, ये दैत्य युद्ध में भागना नहीं जानते और मरने, मारने का ज्ञान भी इनको नहीं है ये सम्बर दैत्य की माया से रचे हैं इसका नाश कैसे हो । जिसको 'अहं' 'मम' का अभिमान हो उसी का नाश भी होता है, पर ये तो 'अहं' 'ममादिक' शत्रुओं को जानते ही नहीं इनका नाश कदाचित् न होगा । जब इनको अहंकार उपजेगा तब इनका नाश होगा इसलिये अहंकार उपजाने का उपाय मैं तुमसे कहता हूँ । तुम उनके साथ युद्ध करते रहो और इस प्रकार युद्ध करो कि कभी उनके सम्मुख रहो, कभी दाहिने रहो, कभी बाँये रहो और कभी भाग जावो । इस प्रकार जब तुम बारम्बार करोगे तब उनके युद्ध के अभ्यासवश से अहंकार का अंकुर उपजेगा और जब अहंकार का चमत्कार हृदय में उपजा तब उसका प्रति बिम्ब भी देखेंगे जिससे यह वासना भी फुर आवेगी कि हम यह हैं, हमको यह कर्त्तव्य है, यह ग्रहण करने योग्य है और यह त्यागने योग्य है । तब वे आपको दाम, व्याल, कट जानेंगे और तुम उनको वश कर लोगे और तुम्हारी जय होगी । जैसे जाल में फँसा हुआ पक्षी वश होता है तैसे ही वे भी अहंकार करके वश होंगे अभी वश नहीं होते । वे तो सुख दुःख से रहित बड़े धैर्यवान् हैं अभी उनका जीतना कठिन है । हे साधो! जो पुरुष वासना की ताँत से बँधे हुए हैं और पेट के कार्यों के वश हैं वे इस लोक में वश हो जाते हैं और जो बुद्धिमान् पुरुष निर्वासनिक हैं और जिनकी सर्वत्र असंसक्त बुद्धि है जो किसी से जीते नहीं जाते । जिनके हृदय में वासना है वे इसी रस्सी से बँधे हुए हैं । जिनको देह में अभिमान है वे चाहे सर्वशास्त्रों के वेत्ता भी हों तो भी

उनको एक बालक भी जीत लेवे, सब आपदाओं के पात्र हैं । यह देहमात्र परिच्छिन्नरूप है, जो पुरुष उसे अपना जानता है और उसमें सत्भावना करता है वह कदाचित् सर्वज्ञ हो तो भी कृपणता को प्राप्त होता है–उसमें उदारता कहाँ है । सबका अपना स्वरूप अनन्त आत्मा अप्रमेय है, जिसको देहादिक में आत्माभिमान हुआ है उसने आपको आप ही दीन किया है । जब तक आत्मतत्त्व से भिन्न त्रिलोकी में कुछभी सत् भासता है तब तक उपादेय बुद्धि होती है और भावना से बाँधा रहता है । संसार में सत्भावना करनी अनन्त दुःखों का कारण है और संसार में असत्बुद्धि सुख का कारण है । हे साधो! जब तक दाम, व्याल, कट की जगत् के पदार्थों में आस्थाभाव नहीं होती तब तक तुम उनको जैसी मक्खी वायु को नहीं जीत सकती तैसे ही न जीत सकोगे । जिसको देह में अहं भावना और जगत् में सत्बुद्धि होती है वह जीव है और वही दीनता को प्राप्त होता है । वह चाहे कैसा बली हो उसको जीतना सुगम है क्योंकि वह तो तुच्छ कृपण है । जिसके अन्तःकरण में वासना नहीं है और मक्षिकावत् है तो भी सुमेरु की नाईं दृढ़ (भारी) हो जाता है । हे देवताओं! जो वासनासंयुक्त है वह कृपणता को प्राप्त होता है–वही गुणी से बँध जाता है । जैसे माला के दाने में छिद्र होता है तो तागे से पिरोया जाता है और जो छिद्र से रहित है वह पिरोया नहीं जाता तैसे ही जिसका हृदय वासना से बिंध गया है उसके हृदय में गुण–अवगुण प्रवेश करते हैं और जो निर्बोध है उसके भीतर प्रवेश नहीं करते । इससे जिस प्रकार 'अहं' 'इदं' आदिक वासना दाम, व्याल, कट के भीतर उपजे वही उपाय करो तब तुम्हारी जय होगी । जिस जिस इष्ट अनिष्ट के भाव– अभाव को जीव प्राप्त होते हैं वहीं तृष्णारूपी कञ्ज (काँटों) का वृक्ष है, उसी से आपदा जो प्राप्त होते हैं । इससे रहित आपदा का अभावहो जाता है । जो वासनारूपी ताँत से बँधे हुए हैं वह अनेक जन्म दुःख पावेंगे, जो बलवान् और सर्वज्ञ कुल का बड़ा है वह भी जो तृष्णा संयुक्त है तो बँधा है । जैसे सिंह जंजीर से पिंजड़ेमें बँधा है तो उसका बल और बड़ाई किसी काम नहीं आती तैसे ही जो तृष्णा से बँधा है सो तुच्छ है । जिसको देहमात्र में अहंभाव है और जिसके हृदय में तृष्णा उत्पन्न होती है वह पुरुष ऐसा है जैसा पक्षी तागे से बँधा हो और उसको बालक भी खींच ले । यम भी उसी को वश करते हैं जो निर्वासनिक पुरुष है । उसको कोई नहीं मार सकता–जैसे आकाश में उड़ते पक्षी को कोई नहीं पकड़ सकता । इससे शस्त्रयुद्ध को त्यागो और उनको वासना उपजाओ तब वे वश होंगे । हे इन्द्र! जिसको 'अहं' 'मम' 'इदं' आदिक वासना नहीं है और रागद्वेष से जिसका अन्तःकरण क्षोभवान् नहीं होता उसको शस्त्र और अस्त्र से कोई नहीं जीत सकता । इससे दाम, व्याल, कट को और किसी उपाय से न जीत सकोगे । युद्ध के अभ्यास से जब उनको अहंकार उपजाओगे तब वह तुम्हारे वश होंगे । हे साधो! ये तो सम्बर दैत्य के रचे हुए यन्त्रपुरुष हैं इनके हृदय में कोई वासना नहीं है, जैसे उसने रचे हैं तैसे ही ये निर्वासनिक पुरुष हैं । जब इनको युद्ध का अभ्यास कराओगे तब इनको अहंकार वासना उपज आवेगी । यह तुमको मैंने वश करने की परम युक्ति कही है । जब तक उनके अन्तःकरण में वासना नहीं फुरती तब तक तुमसे वे अजीत हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामोपाख्यान ब्रह्मवाक्य वर्णनन्नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः ॥२७॥

अनुक्रम

सुरासुरयुद्धवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे समुद्र में तरंग उपजके और शब्दकरके लीन होता है तैसे ही ब्रह्मा कहके जब अन्तर्धान हो गये तब देवता अपनी वाञ्छित दिशाओं को गये और कई दिन अपने स्थान में रहे । फिर अपने कल्याण के निमित्त उनके नाश करने को उठके युद्ध को चले । प्रथम उन्होंने शंख बजाये जिनसे प्रलयकाल के मेघों के गर्जने के समान शब्द से सब स्थान पूर्ण हो गये । निदान पातालछिद्र से शब्द सुनके दैत्य निकले और आकाशमार्ग से देवता आये और युद्ध होने लगा । बरछी, बाण, मुद्गर, गदा, चक्र पहाड़, वृक्ष, सर्प, अग्नि आदिक शस्त्र अस्त्र परस्पर चलने लगे । चक्र, मुसल, त्रिसूल आदिक शस्त्र ऐसे चले जैसे गंगा का प्रवाह चलता है । देवताओं और दैत्यों के समूह नष्ट होते गये, अंग फट गये, शीश–भुजा कट गये और जैसे समुद्र के उछलने से पृथ्वी जल से पूर्ण हो जाती है तैसे ही रुधिर से पृथ्वी पूर्ण हो गई और आकाशदिशा में अग्नि का तेज ऐसा बढ़ गया जैसे प्रलय काल में द्वादश सूर्य का तेज होता है । बड़े पहाड़ों की वर्षा होने लगी और रुधिर के प्रवाह में पहाड़ ऐसे फिरते थे जैसे समुद्र में तरंग और भँवर फिरते हैं । हे रामजी ऐसा युद्ध हुआ कि क्षण में पहाड़ और शस्त्र के प्रवाह, क्षण में सर्प,क्षण में गरुड़ दीखें और अप्सरागण अन्तरिक्ष में भासें, क्षण में जलमय हो जावें, क्षण में सब स्थान अग्नि से पूर्ण हो जावे, क्षण में सूर्य का प्रकाश भासे और क्षण में सर्व ओर से अन्धकार भासे । निदान महाभयानक युद्ध होने लगा । दैत्य आकाश में उड़–उड़के युद्ध करें और देवता वज्र आदिक शस्त्र चलावें और जैसे पंख से रहित पहाड़ गिरते हैं तैसे ही दैत्यों के अनेक समूह गिरके भूमिलोक में आ पड़े और उनमें किसी का शिर, किसी की भुजा और किसी के हाथ–पैर कटे हैं । वृक्षों और पहाड़ो के समान उनके शरीर गिर–गिर पड़े और अनेक संकट को देवता और दैत्य प्राप्त हुए ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे सुरासुरयुद्धवर्णनन्नाम अष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥२८॥

अनुक्रम

दामव्यालकटोपाख्यानेऽसुरहनन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! देवताओं का धैर्य नष्ट हो गया और युद्ध त्याग के अन्तर्धान हुए और पैंतीस वर्षके उपरान्त फिर युद्ध करने लगे । कभी पाँच व सात, कभी आठ दिन के उपरान्त युद्ध करते थे और फिर छिप जाते थे । ऐसे विचारकर छल से ये उनसे युद्ध करें कभी दाम, व्याल, कट के निकट जावें, कभी दाहिने, कभी बायें, कभी आगे और कभी पीछे दौड़ने लगे और इधर–उधर देखके मारने लगे । इस प्रकार जब देवताओं ने बहुत उपाय किया तब युद्ध के अभ्यास से दाम, व्याल, कट भी देवताओं के पीछे दौड़ने लगे और इधर–उधर देखने लगे और अपने देहादिक में उनको अहंकार फुर आया । हे रामजी! जैसे निकटता से दर्पण में प्रतिबिम्ब पड़ता है दूर का नहीं पड़ता, तैसे ही अतिशय अभ्यास से अहंकार फुर आता है अन्यथा नहीं फुरता । जब अहंकार उनको फुरा तब पदार्थों की वासना भी फुर आई और फिर यह फुरा कि हम दाम, व्याल, कट हैं किसी प्रकार जीते रहें, इस इच्छा से वे दीनभाव को प्राप्त हुए और भय पाने लगे कि इस प्रकार हमारा नाश होगा, इस प्रकार हमारी रक्षा होगी, वही उपाय करें जिससे हम जीते रहें । इस प्रकार आशा की फाँस में बँधे हुए वे दीन भाव को प्राप्त हुए और आपको देहमात्र में आस्था करने लगे कि देहरूपी लता हमारी स्थिर रहे, हम सुखी हों, इस वासनासंयुक्त हो और पूर्व का धैर्य त्याग के वे जानने लगे कि यह हमारे शत्रु नाशकर्ता हैं, इनसे किसी प्रकार बचें । उनका धैर्य नष्ट हो गया और जैसे जल बिना कमल की शोभा जाती रहती है तैसे ही इनकी शोभा जाती रही, खाने पीने की वासना फुर आई और संसार की भयानक गति को प्राप्त हुए । तब वे आश्रय लेकर युद्ध करने लगे और ढाल आदिक आगे रक्खे । वे अहंकार से ऐसे भयभीत हुए कि ये हमको मारते हैं, हम इनको मारते हैं । इस चिन्ता में इन सबके हृदय फँस गये और शनैः शनैः युद्ध करने लगे । जब देवता शस्त्र चलावें तब वे बच जावें और भयभीत होकर भागें । अहंकार के उदय होने से उनके मस्तक पर आपदा ने चरण रक्खा और वे महादीन हो गये और ऐसे हो गये कि यदि कोई उनके आगे आ पड़े तो भी उसको न मार सकें । जैसे काष्ठ से रहित अग्नि क्षीर को नहीं भक्षण करती तैसे ही वे निर्बल हो गये । उनके अंग काटे जावें तो वे भाग जावें और जैसे समान शूर युद्ध करते हैं तैसे ही युद्ध करने लगे । हे रामजी! कहाँ तक कहूँ वे मरने से डरने लगे और युद्ध न कर सके । तब देवता वज्र आदिक से प्रहार करने लगे जिनसे वे चूर्ण हो गये और भयभीत होकर भागे । निदान दैत्यों की सब सेना भागी और जो देश देशान्तर से आये थे वह भी सब भागे, कोई किसी देश को कोई किसी देश को पहाड़, कन्दरा और जल में चले गये और जहाँ जहाँ स्थान देखा वहाँ वहाँ चले गये । निदान जब दैत्य भयभीत होकर हारे और देवता ओं की जीत हुई तो दैत्य भागके पाताल में जा छिपे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्यानेऽसुरहननन्नाम एकोनत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥२९॥

अनुक्रम

दामव्यालकटजन्मांतर वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तब देवता प्रसन्न हुए और देवताओं का भय पाके दाम, व्याल, कट पाताल में गये और सम्बर से भी डरे । सम्बर प्रलयकाल की प्रज्वलित अग्नि का रूप था उसका भय करके दाम ब्याल. कट सातवें पाताल में गये और दैत्यों के मण्डल को छेदके जहाँ यमकिंकर रहते हैं उसमें कुकुहा नाम होकर जा रहे । नरकरूपी समुद्र के पालक यमकिंकरी ने दया करके इनको बैठाया जैसे पापी को चिन्ता प्राप्त होती है तैसे ही इनको स्त्रियाँ प्राप्त हुईं उनके साथ सातवें पाताल में रहे । फिर इनके पुत्र पौत्रादिक बड़ी सन्तानें हुईं और उन्होंने सहस्त्र वर्ष वहाँ व्यतीत किये । वहाँ उनको यह वासना दृढ़ हो गई कि 'यह मैं हूँ' 'यह मेरी स्त्री है' और पुत्र कलत्र बान्धवों में बहुत स्नेह हो गया । एक काल में वहाँ अपनी इच्छा से धर्मराज नरक के कुछ काम के लिये आया और उसको देखके सब किंकर उठ खड़े हुए और प्रणाम किया, पर दाम, ब्याल, कट ने जो उसकी बड़ाई न जानते थे उसे किंकर समान जानके प्रणाम न किया । तब यमराज ने क्रोध किया और समझा कि ये दुष्ट मानी हैं इनको शासना देनी चाहिये । इस प्रकार विचार करके यम ने किंकरों को सैन की कि इनको परिवारसंयुक्त अग्नि की खाई में डाल दो । यह सुन वे रुदन करने और पुकारने लगे पर इनको उन्होंने डाल दिया और परिवार संयुक्त नरक की अग्नि में वे ऐसे जले जैसे दावाग्नि में पत्र, टास, फूल, फल संयुक्त वृक्ष जल जाता है । तब मलीन वासना से वे क्रान्त देश के राजा के धीवर हुए और जीवों की हिंसा करते रहे । जब धीवर का शरीर छूटा तब हाथी हुए, फिर चील हुए, बगुले हुए, फिर त्रिगर्त देश में धीवर हुए और फिर बर्बरदेश में मच्छर हुए और मगध देश में कीट हुए । हे रामजी! इस प्रकार दाम, व्याल, कट, तीनों ने वासना से अनेक जन्म पाये और फिर काश्मीर देश में एक ताल है उसमें तीनों मच्छ हुए हैं । वन में अग्नि लगी थी इसलिये उसका जल भी सूख गया है, अल्प जल उष्ण रहा है उसमें रहते हैं और वही जल पान करते हैं, मरते हैं न जीते हैं, उनको जो सम्पदा है उसको भी नहीं भोग सकते, चिन्ता से जलते हैं । हे रामजी! अज्ञान से जीव अनेक बार जन्मते हैं जैसे समुद्र में तरंग उपजते और मिटते हैं और जल के भँवर में तृण भ्रमता है तैसे ही वासना भ्रम से वे फिरें । अब तक उनको शान्ति नहीं प्राप्त हुई । अहंकार वासना महादुख का कारण है, इसके त्याग से सुख है अन्यथा सुख कदाचित् नहीं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटजन्मांतर वर्णनन्नाम त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३०॥

अनुक्रम

निर्वाणोपदेशोनाम

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने तुमको दाम, व्याल, कट का न्याय कहा है, उनकी नाईं तुम ,मत होना । अविवेकी का निश्चय ऐसा है कि अनेक आपदा को प्राप्त करता है और अनन्त दुःख भुगाता है, कहाँ सम्बर दैत्य की सेना के नाथ और देवताओं के नाशकर्त्ता और कहाँतो जल के मच्छ हो जर्जरीभाव को प्राप्त हुए, कहाँ वह धैर्य और बल जिससे देवताओं को नाश करना और भगाना और आप चलायमान न होना और कहाँ क्रान्त देश के राजा के किंकर धीवर होना! कहाँ वह निरहंकाररचित्त, शान्ति, उदारता और धैर्य और कहाँ वासना से मिथ्या अहंकार से संयुक्त होना । इतना दुःख और आपदा केवल अहंकार से हुए अहंकार से संसाररूपी विष की मंजरी शाखा प्रतिशाखा बढ़ती है । संसाररूपी वृक्ष का बीज अहंकार है । जब तक अहंकार है तब तक अनेक दुःख और आपदा प्राप्त होती हैं, इससे तुम अहंकार को यत्न करके मार्जन करो । मार्जन करना यह है कि अहंवृत्ति को असत्‌रूप जानो कि 'मैं कुछ नहीं' । इस मार्जन से सुखी होगे । हे रामजी! आत्मरूपी अमृत का चन्द्रमा है और शीतल और शान्तरूप उसका अंग है, अहंकार रूपी मेघ से वह अदृष्ट हुआ नहीं भासता । जब विवेकरूपी पवन चले तब अहंकाररूपी बादल नष्ट हो और आत्मरूपी चन्द्रमा प्रत्यक्ष भासे जब अहंकाररूपी पिशाच उपजा तब तो दाम, व्याल, कट तीनों मायारूप दानव सत् होके अनेक आपदाओं को भोगते हैं । अब तक वे काश्मीर के ताल में मच्छरूप से पड़े हैं और सिवाल के भोजन करने को यत्न करते हैं, जो अहंकार न होता तो इतनी आपदा क्यों पाते? रामजी बोले, हे भगवन्! सत् का अभाव नहीं होता और असत् का भाव नहीं होता । असत् दाम, व्याल, कट, सत् कैसे हुए? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार है कि जो सत् नहीं सो भान नहीं होता परन्तु कोई सत् को असत् देखता है और कोई असत् को सत् देखता है–जो स्थित है । इसी युक्ति से तुमको प्रबोध करूँगा । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! हम, तुम जो ये सब हैं वे सत्यरूप हैं और दामादिक मायामात्र असत्‌रूप थे वे सत् कैसे हुए, यह कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे दामादिक मायारूप मृग तृष्णा के जलवत् असत् से स्थित हुए थे तैसे ही तुम, हम, देवता, दानव सम्पूर्ण संसार असत् मायामात्र सत् होके भासता है वास्तव में कुछ नहीं । जैसे स्वप्न में जो अपना मरना भासता है वह असत्‌रूप है तैसे ही हम, तुम आदिक यह जगत् असत्‌रूप है । जैसे स्वप्न मे जो अपने मरे बान्धव आन मिलते हैं और प्रत्यक्ष चर्चा करते भासते हैं वे असत्‌रूप होते हैं, तैसे ही यह जगत् भी असत्‌रूप है । ये मेरे वचन मूढ़ों का विषय नहीं, उनको नहीं शोभते क्योंकि उनके हृदय में संसार का सद्भाव दृढ़ हो गया है और अभ्यास बिना इस निश्चय का अभाव नहीं होता । जैसा निश्चय किसी के हृदय में दृढ़ हो रहा है वह दृढ़ अभ्यास के यत्न बिना कदाचित् दूर नहीं होता । जिसको यह निश्चय है कि जगत् सत् है वह मूर्ख उन्मत्त है और जिसके हृदय में जगत् का सद्भाव नहीं होता वह ज्ञानवान् है, उसे केवल ब्रह्मसत्ता का भाव होता है और अज्ञानी को जगत् भासता है । अज्ञानी के निश्चय को ज्ञानी नहीं जानता और ज्ञानी के निश्चय को अज्ञानी नहीं जानता । जैसे मदमत्त के निश्चय को अमत्त नहीं जानता और अमत्त के निश्चय को मत्त नहीं जानता, तैसे ही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय इक ा नहीं होता । जैसे प्रकाश और अन्धकार और धूप और छाया इक ी नहीं होती तैसे ही ज्ञानी और अज्ञानी का निश्चय एक नहीं होता । जिसके चित्त में जो निश्चय है उसको जब वही अभ्यास और यत्न करके दूर करे तब दूर होता है अन्यथा नहीं होता । ज्ञानी भी अज्ञानी के निश्चय को दूर नहीं कर सकता, जैसे मृतक की जीवकला को मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकते कि उसके निश्चय में क्या है? जो ज्ञानवान् है उसके निश्चय में सर्व ब्रह्म का भान होता है और उसे जगत् द्वैत

नहीं भासता और उसी को मेरे वचन शोभते हैं । आत्म अनुभव सर्वदा सत्‌रूप है और सब असत् पदार्थ हैं । ये वचन प्रबुध के विषय हैं और उसी को शोभते हैं । अज्ञानी को जगत् सत् भासता है इससे ब्रह्मवाणी उसको शोभा नहीं देती । ज्ञानी को यह निश्चय होता है कि जगत् रञ्चमात्र भी सत्य नहीं, एक ब्रह्म ही सत्य है । यह अनुभव बोधवान् का है, उसके निश्चय को कोई दूर नहीं कर सकता कि परमात्मा के व्यतिरेक (भिन्न) कुछ नहीं । जैसे सुवर्ण में भूषण भाव नहीं तैसे ही आत्मा में सृष्टिभाव नहीं अज्ञानी को पञ्चभूत से व्यतिरेक कुछ नहीं भासता, जैसे सुवर्ण में भूषण नाममात्र है तैसे ही वह आपको नाम मात्र जानता है, सम्यक्‌दर्शी को इसके विपरीत भासता है । जो पुरुष होके कहे, 'मैं घट हूँ' तो जैसे यह निश्चय उन्मत्त है तैसे ही हम तुम आदिक भी असत्‌रूप हैं, सत् वही है जो शुद्ध, संवित्बोध, निरञ्जन, सर्वगत, शान्तरूप, उदय व अस्त से रहित है । जैसे नेत्र दूषणवाले को आकाश में तरवरे भासते हैं तैसे ही अज्ञानी को जगत् सत्‌रूप भासता है । आत्मसत्ता में जैसा–जैसा किसी को निश्चय हो गया है तैसा ही तत्काल हो भासता है, वास्तव में जैसे दामादिक थे तैसे ही तुम हम आदिक जगत् हैं और अनन्त चेतन आकाश सर्वगत निराकारमें स्फूर्ति है वही देहाकार हो भासती है । जैसे संवित् का किंचन दामादिक निश्चय से आकारवान् हो भासे तैसे ही हम तुम भी फुरने मात्र हैं और संवेदन के फुरने से ही स्थित हुए हैं । जैसे स्वप्न नगर और मृगतृष्णा की नदी भासती है तैसे ही हम तुम आदिक जगत् आत्म रूप भासते हैं । प्रबुध को सब चिदाकाश ही भासता है और सब मृगतृष्णा और स्वप्ननगर वत् भासता है । जो आत्मा की ओर जागे हैं और जगत् की ओर सोये हैं,वे मोक्षरूप हैं और जो आत्मा की ओर से सोये और जगत् की ओर से जागे हैं वे अज्ञानी बन्धरूप हैं । पर वास्तव में न कोई सोये हैं, न जागे हैं, न बँधे हैं, न मोक्ष हैं, केवल चिदाकाश जगत्‌रूप होके भासता है । निर्वाण सत्ता ही जगत् लक्ष्मी होकर स्थित हुई है और जगत् निर्वाणरूप है–दोनों एक वस्तु के पर्याय हैं । जैसे तरु और विटप एक ही वस्तु के दो नाम हैं तैसे ही ब्रह्म और जगत् एक ही वस्तु के पर्याय हैं । जैसे आकाश में तरवरे भासते हैं और हैं नहीं, केवल आकाश ही है, तैसे ही अज्ञानी को ब्रह्म में जो जगत् भासते हैं वे हैं नहीं, ब्रह्म ही है । जैसे नेत्र में तिमिर रोगवाले को जो तरवरे भासते हैं वे तरवरे नेत्ररोग से भिन्न नहीं तैसे ही अज्ञानी को अपना आप चिदाकाश ही अन्यरूप हो भासता है वह चिदाकाश सर्व और व्यापकरूप है और उससे भिन्न जगत् असत् है । सत्यरूप, एक, विस्तृत आकार, महाशिलावत्, घनस्वच्छ निःस्पन्द, उदय–अस्त से रहित वही सत्ता है इसलिये सर्वकलना को त्यागकर उसी अपने आप में स्थित हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे निर्वाणोपदेशोनाम एकत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३१॥

अनुक्रम

दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! असत् सत् की नाईं होके जो स्थित हुआ है वह बालक को अपनी परछाहीं में वैतालवत् भासता है सो जैसे हुआ तैसे हुआ, आप यह कहिये कि दाम, व्याल, कट के दुःख का अन्त कैसे होगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब उनको यमराज ने अग्नि में भस्म कराया तब यमराज से किंकरों ने पूछा कि हे प्रभो! इनका उद्धार कब होगा? तब यमराज ने कहा, हे किंकरों! अब ये तीनों आपस में बिछुर जावेंगे और अपनी सम्पूर्ण कथा सुनेंगे तब निःसंदेह होके मुक्त होंगे, यही नीति है । रामजी ने फिर पूछा, हे भगवन्! वह वृत्तान्त कहाँ सुनेंगे, कब सुनेंगे और कौन निरूपण करेगा? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! काश्मीर देश में कमलों से पूर्ण एक बड़ा ताल है और उसके निकट एक छोटा ताल है उसमें वे चिरपर्यन्त बारम्बार मच्छ होंगे और मच्छ का शरीर त्याग करके सारस पक्षी होके कमलों के ताल पर रहकर कमल, कमलिनी और उत्पलादिक फूलों में विचरेंगे और सुगन्ध को लेते चिरकाल व्यतीत करेंगे । दैवसंयोग से उनके पाप नष्ट होंगे और बुद्धि निर्मल हो आवेगी तब तीनों आपमें बिछुर जावेंगे और युक्ति से मुक्ति पावेंगे जैसे राजस, तामस, सात्त्विक गुण आपस में स्वेच्छित बिछुर जाते हैं तैसे ही वे भी स्वेच्छित बिछुर जावेंगे । काश्मीर में एक पहाड़ है उसके शिखर पर एक नगर बसेगा तिसका नाम प्रद्युम्न और उस शिखर पर कमलों से पूर्ण एक ताल होगा जहाँ राजा का एक स्थान होगा और ईशान कोण की ओर उसका मन्दिर होगा । उस मन्दिर के छिद्र में व्याल नामक दैत्यआलय बना चिड़िया होकर रहेगा और निरर्थक शब्द करेगा । उस काल में श्रीशंकर नाम राजा गुण और भूति से सम्पन्न मानो दूसरा इन्द्र होगा और उसके मन्दिर के छत की कड़ी के छिद्र में दाम नाम दैत्य मच्छर होकर भूँ भूँ शब्द करता बिचरेगा । कट नाम दैत्य वहाँ क्रीड़ा का पक्षी होगा और रत्नों से जड़े हुए पिंजड़े में रहेगा । उस राजा का नरसिंह नाम मन्त्री बुद्धिमान् होगा । जैसे हाथ में आँवला होता है तैसे ही उस मन्त्री को बन्ध और मुक्ति का ज्ञान प्रसिद्ध होगा । वह मन्त्री राजा के आगे दाम, व्याल, कट की कथा श्लोक बाँधकर कहेगा । तब वह करकर नाम पक्षी अर्थात् कट दैत्य को पिंजड़े में सुनने से अपना वृत्तान्त सब स्मरण होगा और उसको विचारेगा । तब उसका मिथ्या अहंकार शान्त होगा और वह परम निर्वाण सत्ता को प्राप्त होगा । इसी प्रकार राजा के मन्दिर में चिड़िया हुआ व्याल नाम दैत्य भी सुनकर परम निर्वाण सत्ता को प्राप्त होगा और लकड़ी के छिद्र में मच्छर हुआ दाम नाम दैत्य भी मुक्त होगा । हे रामजी! यह सम्पूर्ण क्रम मैंने तुमसे कहा है । यह संसार भ्रम मायामय है और अत्यन्त भास्वर (प्रकाशरूप) भासता है, पर महाशून्य और अविचार सिद्ध है । विचार करके ज्ञान हुए से शान्त होजाता है– जैसे मृगतृष्णा का जल भली प्रकार देखे से शान्त हो जाता है । यद्यपि अज्ञानी बड़े पद को प्राप्त होता है तो भी मोह से अधो से अधो चला जाता है–जैसे दाम, व्याल, कट महाजाल में पड़े थे । कहाँ तो वह बल भौंह टेढ़ी करने से सुमेरु और मन्दराचल से पर्वत गिर जावें और कहाँ राजा के गृह में काष्ठ के छिद्र में मच्छर हुए, कहाँ वह बल जिसके हाथ की चपेट से सूर्य और चन्द्रमा गिर पड़ें और कहाँ प्रद्युम्न पहाड़ के गृह छिद्र में चिड़िया होना, कहाँ वह बल जो सुमेरु पर्वत को पीले फूल की नाईं लीला करके उठा लेना और कहाँ पहाड़ के शिखर पर गृह में पक्षी होना । एक अज्ञानरूपी अहंकार से इतनी लघुता को जीव प्राप्त होते हैं और अज्ञान से रञ्चित हुए मिथ्या भ्रम देखते हैं । प्रकाशरूप चिदाकाश सत् बिना इनको भासता है और अपनी वासना की कल्पना से जगत् सत्रूप भासता है । जैसे मृगतृष्णा का जल भ्रम से सत् भासता है तैसे ही अपनी कल्पना से जगत् सत् भासता है । इस संसार समुद्र को कोई नहीं तर सकता जो पुरुष शास्त्र के विचारद्वारा निर्वासनिक हुआ है और जो संसार निरूपण शास्त्र का, जिसका

प्रकाशरूप शब्द है, आश्रय करता है यह संसार के पदार्थों को शुभ रूप जानता है, इससे नीचे गिरता है–जैसे कोई गढ़े को जलरूप जानके स्नान के निमित्त जावे और गिर पड़े । हे रामजी! अपने अनुभवरूपी प्रसिद्ध मार्ग में जो प्राप्त हुए हैं उनका नाश नहीं होता वे सुख से स्वच्छन्द चले जाते हैं–जैसे पथिक सूधे मार्ग में चला जाता है । ब्रह्मनिरूपकशास्त्र निर्वेदमार्ग है और संसारनिरूपकशास्त्र दुःखदायक मार्ग हैं । यह जगत् असत्‌रूप और भ्रान्तिमात्र है, जिसकी बुद्धि इसी में है कि ये पदार्थ और ये मुख मुझको प्राप्त हों वे इस प्रकार संसार के विषय की तृष्णा करते हैं और वे अभागी हैं और जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको जगत् घास और तृण की नाईं तुच्छ भासता है । जिस पुरुष के हृदय में परमात्मा का चमत्कार हुआ है वह ब्रह्माण्ड खण्ड लोक और लोकपालों को तृणवत् देखता है । जैसे जीव आपदा को त्यागता है तैसे ही उसके हृदय में ऐश्वर्य भी आपदारूप त्यागने योग्य है । इससे हृदय से निश्चयात्मक तत्त्व में रहो और बाहर जैसा अपना आचार है तैसा करो । आचार का व्यतिक्रम न करना क्योंकि व्यतिक्रम करने से शुभ कार्य भी अशुभ हो जाता है–जैसे राहु दैत्य ने अमृतपान करने का यत्न किया था पर व्यतिक्रम करने से शरीर कटा । इससे शास्त्रानुसार चेष्टा करनी कल्याण का कारण है । सन्तजनों की संगति और सत्‌शास्त्रों के विचार से बड़ा प्रकाश प्राप्त होता है । जो पुरुष इनको सेवता है वह मोह अन्धकूप में नहीं गिरता । हे राम जी!वैराग्य धैर्य संतोष, उदारता आदिक गुण जिसके हृदय में प्रवेश करते हैं वह पुरुष परम सम्पदावान् होता और आपदा को नष्ट करता है । जो पुरुष शुभगुणों से सन्तुष्ट है और सत्शास्त्र के श्रवण राग में राग है और जिसे सत् की वासना है वही पुरुष है, और सब पशु हैं । जिसमें वैराग्य, सन्तोष, धैर्य आदि गुणों से चाँदनी फैलती है और हृदयरूपी आकाश में विवेकरूपी चन्द्रमा प्रकाशता है वह पुरुष शरीर नहीं मानों क्षीरसमुद्र है, उसके हृदय में विष्णु विराजते हैं । जो कुछ उसको भोगना था वह उसने भोगा और जो कुछ देखना था वह देखा, फिर उसे भोगने और देखने की तृष्णा नहीं रहती । जिस पुरुष का यथाक्रम और यथाशास्त्र आचार और निश्चय है उसको भोग की तृष्णा निवृत्त हो जाती है और उस पुरुष के गुण आकाश में सिद्ध देवता और अप्सरा गानकरते हैं और वही मृत्यु से तरता है भोग की तृष्णावाले कदाचित् नहीं तरते । हे रामजी! जिन पुरुषों के गुण चन्द्रमा की नाईं शीतल हैं और सिद्ध और अप्सरा जिनका गान करते हैं वे ही पुरुष जीते हैं और सब मृतक हैं । इससे तुम परम पुरुषार्थ का आश्रय करो तब परम सिद्धता को प्राप्त होगे । वह कौन वस्तु है जो शास्त्र अनुसार अनुद्वेग होकर पुरुषार्थ करने से प्राप्त न हो? कोई वस्तु क्यों न हो अवश्यमेव प्राप्त होती है । यदि चिरकालव्यतीत हो जावे और सिद्ध न हो तो भी उद्वेग न करे तो वह फल परिपक्व होकर प्राप्त होगा–जैसे वृक्ष से जब परिपक्व होके फल उतरता है तब अधिक मिष्ट और सुखदायक होता है । यथा शास्त्र व्यवहार करनेवाला उस पद को प्राप्त होता है जहाँ शोक, भय और यत्न सब नष्ट हो जाते हैं और शान्तिमान् होता है । हे रामजी! मूर्ख जीवों की नाईं संसारकूप में मत गिरो । यह संसार मिथ्या है । तुम उदार आत्मा हो, उठ खड़े हो और अपने पुरुषार्थ क आश्रय करो और इस शास्त्र को विचारो । जैसे शूर रण में प्राण निकलने लगे तो भी नहीं भागता और शस्त्र को पकड़ के युद्ध करता है कि अमरपद प्राप्त हो, तैसे ही संसार में शास्त्र का विचार पुरुषार्थ है, यही पुरुषार्थ करो और शास्त्र को विचारो कि कर्त्तव्य क्या है । जो विचार से रहित है वह दुर्भागी दीनता और अशुभ को प्राप्त होता है । महामोहरूपी घन निद्रा को त्याग करके जागो और पुरुषार्थ को अंगीकार करो जो जरा–मृत्यु के शान्ति का कारण है और जो कुछ अर्थ है वह सब अनर्थरूप है, भोग सब रोग के समान हैं और सम्पदा सब आपदारूप हैं, ये सब त्यागने योग्य हैं । इसलिये सत्‌मार्ग को अंगीकार करके अपने प्रकृत आचार में विचारो और शास्त्र और लोक मर्यादा के अनुसार व्यवहार करो, क्योंकि शास्त्र के अनुसार कर्म का

करना सुखदायक होता है । जिस पुरुष का शास्त्र के अनुसार व्यवहार है उसका संसारनष्ट हो जाता है और आयु, यश, गुण और लक्ष्मी की वृद्धि होती है । जैसे वसन्तऋतु की मञ्जरी प्रफुल्लित होती है तैसे ही वह प्रफुल्लित होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दामव्यालकटोपाख्याने देशाचारवर्णनन्नाम द्वात्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३२॥

अनुक्रम

दाम, व्याल, कटोपाख्यानं

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! सर्व दुःख का देनेवाला और सब सुख का फल, सब ठौर, सब काल में, सबको अपने कर्म के अनुसार होता है । एक दिन नन्दीगण ने एक सरोवर पर जाके सदा शिव का आराधन किया और सदाशिव प्रसन्न हुए तो उसने मृत्यु को जीता, प्रथम नन्दी था सो नन्दीगण नाम हुआ और मित्र बाँधव सबको सुख देनेवाला अपने स्वभाव से यत्न करके हुआ । शास्त्र के अनुसार यत्न करने से दैत्य क्रम से देवताओं को जो सबसे उत्कृष्ट हैं, मारते हैं । मरुत राजा के यज्ञ में संवृत नामक एक महाऋषि आया और उसने देवता, दैत्य , मनुष्य आदिक अपनी सृष्टि अपने पुरुषार्थ से रची–मानों दूसरा ब्रह्मा था और विश्वामित्र ने बारम्बार तप किया और तप की अधिकता और अपने ही शुद्धाचार से राजर्षि से ब्रह्मर्षि हुए । हे रामजी! उपमन्यु नाम एक दुर्भागी ब्राह्मण था और उसको अपने गृह में भोजन की सामग्री ना प्राप्त होती थी । निदान एक दिन उसने एक गृहस्थ के घर पिता के साथ दूध, चावल और शर्करा सहित भोजन किया और अपने गृह में आ पिता से कहने लगा मुझको वही भोजन दो जो खाया था । पिता ने साँव के चाँवल और आटे का दूध घोलके दिया और जब उसने भोजन किया तब वैसा स्वाद न लगा, तो फिर पिता से बोला कि मुझको वही भोजन दो जो वहाँ पर खाया था । पिता ने कहा, हे पुत्र! वह भोजन हमारे पास नहीं, सदाशिव के पास है, जो वे देवें तो हम खवावें । तब वह ब्राह्मण सदाशिव की उपासना करने लगा और ऐसा तप किया कि शरीर अस्थिमात्र हो रहा और रक्त–माँस सब सूख गया । तब शिवजी ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और कहा हे, ब्राह्मण! जो तुम को इच्छा है वह वर माँगो । ब्राह्मण ने कहा, दूध और चाँवल दो । तब सदाशिव ने कहा दूध और चावल क्या, कुछ और माँग, पर जो तूने कहा है तो यही भोजन किया कर । तब उसकी वही भोजन प्राप्त हुआ और शिवजी ने कहा जब तू चिन्तन करेगा तब मैं दर्शन दूँगा । हे रामजी! यह भी अपना पुरुषार्थ हुआ । त्रिलोकी की पालना करने वाले विष्णु को भी काल तृण की नाईं मर्दन करता है, पर उस काल को श्वेत ने उद्यम करके जीता है और सावित्री का भर्त्ता मृतक हुआ था,पर वह पतिव्रता थी उसने स्तुति और नमस्कार करके यम को प्रसन्न किया और भर्त्ता को परलोक से ले आईं– यह भी अपना ही पुरुषार्थ है । श्वेत नाम एक ऋषिश्वर था उसने अपने पुरुषार्थ से काल को जीतके मृत्युञ्जय नाम पाया । इससे ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो यथाशास्त्र उद्यम किये से प्राप्त न हो ।अपने पुरुष प्रयत्न का त्याग न करना चाहिये, इससे सुख, फल और सर्व की प्राप्ति होती है । जो अविनाशी सुख की इच्छा हो तो आत्मबोध का अभ्यास करो । और जो कुछ संसार के सुख हैं वे दुःख से मिले हैं और आत्मसुख सब दुःख का नाशकर्ता है किसी से मिले हुए हैं और आत्मसुख सब दुःख का नाशकर्त्ता है किसी दुःख से नहीं मिला वास्तव कहिये तो सम असम सर्व ब्रह्म ही है पर तो भी सम परम कल्याण का कर्त्ता है । इससे अभिमान का त्याग करके सम का आश्रय करो और निरन्तर बुद्धि से विचार करो । जब यत्न करके सन्तों का संग करोगे तब परमपद को प्राप्त होगे । हे रामजी! संसार समुद्र के पार करने को ऐसा समर्थ कोई तप नहीं और न तीर्थ है । सामान्य शास्त्रों से भी नहीं तर सकता, केवल सन्तजनों के संग से भवसागर को सुख से तरता है । जिस पुरुष के लोभ, मोह,क्रोध आदिक विकार दिन प्रति दिन क्षीण होते जाते हैं और यथा शास्त्र जिसके कर्म हैं ऐसे पुरुष को सन्त और आचार्य कहते हैं । उसकी संगति संसार के पापकर्मों से निवृत्त करती है और शुभ में लगाती है । आत्मवेत्ता पुरुष की संगति से बुद्धि में संसार का अत्यन्त अभाव हो जाता है । जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हुआ तब आत्मा शेष रहता है । इस क्रम से जीव का जीवत्व भाव निवृत्त हो जाता है और बोधतत्त्व शेष रहता है । जगत् न उपजता है न आगे होगा और न अब वर्त्तमान में है । इस

प्रकार मैंने तुमसे अनन्त युक्ति से कहा है और कहूँगा । ज्ञानवान् को सर्वदा ऐसा ही मनन होता है । अचल चिदात्मा में चञ्चल चित्त फुरा है और उसी ने जगत् आभास रचा है । जैसे जैसे वह फुरता है तैसे ही तैसे भासता है और वास्तव में कुछ नहीं । जैसे सूर्य और किरणों में कुछ भेद नहीं । तैसे ही जगत् और आत्मा में कुछ भेद नहीं । अहंरूप आत्मा में आपको न जानना ही आत्माकाश में मेघरूपी मलीनता है । जब परमार्थ में अहंभाव को जानेगा तब अनात्म में अहंभाव लीन हो जावेगा और तभी चिदाकाश से जीव की अत्यन्त एकता होती है । जैसे घट के फुटे से घटा काश की महाकाश से एकता होती है । निश्चय करके जानो कि अहंआदिक दृश्य वास्तव में कुछ नहीं है विचार किये से नहीं रहता । जैसे बालक की परछाहीं में पिशाच भासता है सो भ्रान्तिमात्र होता है तैसे ही यह जगत् भ्रान्ति सिद्ध है, अपनी कल्पना से भासता है और दुःखदायक होता है पर विचार किये से नष्ट हो जाता है । हे रामजी! आत्मरूपी चन्द्रमा सदा प्रकाशित है और अहंकाररूपी बादल उसके आगे आता है उससे परमार्थ बुद्धिरूपी कमलिनी विकास को नहीं प्राप्त होती, इससे विवेकरूपी वायु से उसको नष्ट करो । नरक, स्वर्ग, बन्ध, मोक्ष, तृष्णा, ग्रहण, त्याग आदिक सब अहंकार से फुरते हैं । हृदयरूपी आकाश में अहंकाररूपी मेघ जब तक गरजता और वर्षा करता है तब तक तृष्णारूपी कण्टक मञ्जरी बढ़ती जाती है । जब तक अहंकाररूपी बादल आत्मारूपी सूर्य को आक्रमण करता है तब तक जड़ता और अन्धकार है और प्रकाश उदय नहीं होता । अहंकाररूप वृक्ष की अनन्त शाखा फैलती हैं । 'अहं' 'मम' आदिक विस्तार अनेक अर्थों को प्राप्त करता है । जो कुछ संसार में सुख दुःख आदिक प्राप्त होता है वह अहंकार से प्राप्त होता है । संसाररूपी चक्र की अहंकार नाभि है जिससे भ्रमता है और 'अहं' 'मम' रूपी बीज से अनेक जन्मरूपी वृक्ष की परम्परा उदय और क्षय होती है और कभी नष्ट नहीं होती । इससे यत्न करके इसका नाश करो । जब तक अहंकाररूपी अन्धकार है तब तक चिन्तारूपी पिशाचिनी विचरती है और अहंकाररूपी पिशाच ने जिसको ग्रहण किया है उस नीच पुरुष को मन्त्र तन्त्र भी दीनता से छुड़ा नहीं सकते । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! निर्मल चिन्मात्र आत्मसत्ता जो अपने आप में स्थित है उसमें अहंकाररूपी मलीनता कहाँ से प्रतिबिम्बित हुई? वशिष्ठजी बोले, हे राघव! अहंकार चमत्कार जो भासता है वह वास्तव धर्म नहीं मिथ्या है वासना भ्रम से हुआ है और पुरुष प्रयत्न करके नष्ट हो जाता है, न मैं हूँ, न मेरा कोई है 'अहं' 'मम' में कुछ सार नहीं । जब अहंकार शान्त होगा तब दुःख भी कोई न रहेगा । जब ऐसी भावना का निश्चय दृढ़ होगा तब अहंकार नष्ट हो जावेगा और जब अहंकार नष्ट हुआ तब हेयोपादेय बुद्धि भी शान्त हो जावेगी और समता आदिक प्रसन्नता उदय होगी । अहंकार की प्रवृत्ति ही दुःख का कारण है । रामजी ने पूछा, हे प्रभो! अहंकार और रूप क्या है, त्याग कैसे होता है, शरीर से रहित कब होता है और इसके त्याग से क्या फल होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अहंकार तीन प्रकार का है । दो प्रकार का श्रेष्ठ अहंकार अंगीकार करने योग्य है और तीसरा त्यागने योग्य है । इसका त्याग शरीर सहित होता है ।'यह सब दृश्य मैं ही हूँ और परमात्मा अद्वैतरूप हूँ मुझसे भिन्न नहीं' यह निश्चय परम अहंकार है और मोक्ष देने वाला है–बन्धन का कारण नहीं, इससे जीवनमुक्त विचरते हैं । यह अहंकार भी मैंने तुमको उपदेश के निमित्त कल्प के कहा है वास्तव में यह भी नहीं है केवल अचेत चिन्मात्रसत्ता है । दूसरा अहं कार यह है कि मैं सबसे व्यतिरेक (भिन्न) हूँ और बाल के अग्रभाग का सौंवा भाग सूक्ष्म हूँ' ऐसा निश्चय भी जीवन्मुक्ति है और मोक्षदायक है– बन्धन का कारण नहीं । यह अहंकार भी मैंने तुमसे कल्प के कहा है, वास्तव में यह कहना भी नहीं है । तीसरा अहंकार यह है कि हाथ, पाँव आदि इतना मात्र आपको जानना, इसमें जिसका निश्चय है वह तुच्छ है और अपने बन्धन का कारण है । इसको त्याग करो, यह दुष्टरूप परम शत्रु है, इसमें जो जीव मरते हैं वे परमार्थ की ओर नहीं आते । यह अहंकाररूपी चतुर शत्रु बड़ा बली

है और नाना प्रकार के जन्म और मानसी दुःख काम, क्रोध, राग, द्वेष आदिक का देनेवाला है । यह सब जीवों को नीच करता है और संकट में डालता है । इस दुष्ट अहंकार के त्याग के पीछे जो शेष रहता है वह आत्म भगवान् मुक्तरूप सत्ता है । हे रामजी! लोक में जो वपु की अहंकार भावना है कि 'मैं यह हूँ, 'इतना हूँ' यही दुःख का कारण है । इसको महापुरुषों ने त्याग किया है, वे जानते है, कि हम देह नहीं हैं, शुद्ध चिदानन्दस्वरूप हैं। प्रथम जो दो अहंकार मैंने तुमको कहे हैं वह अंगीकार करने योग्य और मोक्षदायक हैं और तीसरा अहंकार त्यागने योग्य है, क्योंकि दुःख का कारण है । इसी अहंकार को ग्रहण करके दाम, व्याल, कट आपदा को प्राप्त हुए जो महाभयदायक है और कहने में नहीं आती और जिन्होंने भोगी है उनकी क्या कहना है, वह जानते ही हैं । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! तीसरा अहंकार जो आपने कहा है उसका त्याग किये से पुरुष का क्या भाव रहता है और उसको क्या विशेषता प्राप्त होती है? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! जब जीव अनात्मा के अहंकार को त्याग करता है तब परम पद को प्राप्त होता है । जितना जितना वह त्याग करता है उतना ही उतना दुःख से मुक्त होता है, इससे इसको त्याग करके आनन्दवान् हो । इसको त्याग के महापुरुष शोभता है । जब तुम इसको त्यागोगे तब ऊँचे पदको प्राप्त होगे । सर्वकाल सर्व यत्न करके दुष्ट अहंकार को नष्ट करो, परमा नन्द बोध के आगे आवरण यही है, इसके त्याग से बोधवान् होते हैं । जब यह अहंकार निवृत्त होता है तब शरीर पुण्यरूपी हो जाता है और परमसार के आश्रय को प्राप्त होता है । यही परमपद है । जब मनुष्य स्थूल अहंकार का त्याग करता है तब सर्व व्यवहार चेष्टा में आनन्दवान् होता है । जिस पुरुष का अहंकार शान्त हुआ है उसको भोग और रोग दोनों स्वाद नहीं देते–जैसे अमृत से जो तृप्त हुआ है उसको ख ा और मीठा दोनों स्वाद नहीं देते । अर्थात् राग–द्वेष से चलायमान नहीं होता एकरस रहता है जिसका अनात्मा में अहंभाव नष्ट हुआ है उसको भोगों में राग नहीं होता और तृष्णा, राग, द्वेष नष्ट हो जाता है । जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धकार नष्ट हो जाता है तैसे ही अपने दृढ़ पुरुषार्थ से जिस के हृदय से अहंकार का अनुसंधान नष्ट होता है वह संसारसमुद्र को तर जाता है । इससे यही निश्चय धारण करो कि 'न मैं हूँ' न कोई मेरा है' अथवा 'सर्व मैं ही हूँ' 'मुझसे भिन्न कुछ वस्तु नहीं' यह निश्चय जब दृढ़ होगा तब संसार की द्वैत भावना मिट जावेगी और केवल आत्मतत्त्व का सर्वदा मान होगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्यानंनाम त्रयस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३३॥

अनुक्रम

दाम, व्याल, कटोपाख्यानसमाप्ति वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जब दाम, व्याल, कट युद्ध करते–करते भाग गये तब सम्बर के नगर की जो अवस्था हुई सो सुनो । पहाड़ के समान नगर में जब सम्बर की जितनी कुछ सेना थी वह सब नष्ट हो गई तब देवता जीतकर अपने अपने स्थानों में जा बैठे और सम्बर भी क्षोभ को पाके बैठ रहा । जब कुछ वर्ष व्यतीत हुए तब देवताओं के मारने के निमित्त सम्बर फिर युक्ति विचारने लगा कि दामादिक जो माया से रचे थे सो मूर्ख और बलवान् थे परन्तु मिथ्या अहंकार का बीज अज्ञान उनको मिथ्या अहंकार आन फुरा जिससे वे नष्ट हुए और भागे । अब मैं ऐसे योद्धा रचूँ जो आत्मवेत्ता ज्ञानवान् और निरहंकार हों और जिनको कदाचित अहंकार न उत्पन्न हो तो उनको कोई जीत भी न सकेगा और वे सब देवताओं की सेना मारेंगे । हे रामजी! इस प्रकार चिन्तन करके सम्बर ने माया से इस भाँति दैत्य रचे जैसे समुद्र अपने बुद्बुदे रच ले । वे सर्वज्ञ, विद्या के वेत्ता और वीत राग आत्मा थे और यथाप्राप्त काम करते थे । उनको आत्मभाव का निश्चय था और आत्मरूप उत्तमपुरुष उपजे । भीम, भास और दट उनके नाम थे । वे तीनों सम्पूर्ण जगत् को तृणवत् जानते थे और परम पवित्र उनके हृदय थे । वे गरजने और महाबल से शब्द करने लगे जिससे आकाश पूर्ण हो गया तब इन्द्रादिक देवता स्वर्ग में शब्द सुनके बड़ी सेना संग लेकर आये और यह बड़े बली भी बिजलीवत् चमत्कार करने लगे । दोनों ओर से युद्ध होने लगे और शस्त्रों की नदियों का प्रवाह चला, पर भीम, भास, दट धैर्य से खड़े रहे । कभी कोई शस्त्र का प्रहार लगे तब युद्ध के अभ्यास से देह का मोह आन फुरे पर फिर विचार में सावधान हों कि हम तो अशरीर हैं और चैतन्यमय, निराकार, निर्विकार, अद्वैत, अच्युतरूप हैं, हमारे शरीर कहाँ है । जब जब मोह आवे तब ऐसे विचार करें और जरा मरण उनको कुछ न भासे । वे निर्भय होकर वासना जाल से मुक्त हुए शत्रु को मारते और युद्ध करते थे और हेयोपादेय से रहित समदृष्टि हो युद्धकार्य को करते रहे । निदान दृढ़ युद्ध हुआ तब देवताओं की सेना मारी गई और जो कुछ शेष रहे सो भीम, भास, दट के भय से भागे । जैसे जल पर्वत से उतरता है और तीक्ष्ण वेग से चलता है तैसे ही देवता तीक्ष्ण वेग से भागे और क्षीरसमुद्र में भगवान् विष्णु की शरण में गये । उनको देख के विष्णुभगवान् ने कहा कि तुम यहाँ ठहरो मैं उनको युद्ध करके मार आता हूँ । ऐसे कहकर विष्णु भगवान् सुदर्शन लेकर सम्बर की ओर आये उनका और सम्बर का बड़ा युद्ध हुआ मानो अकाल प्रलय आया है । बड़े बड़े पर्वत उछलने लगे और युद्ध होने लगा तब सम्बर भागा और महाप्रकाशरूप सुदर्शन चक्र से विष्णुजी ने उसको मार लिया सम्बर शरीर को त्याग के विष्णुपुरी को प्राप्त हुआ और विष्णु भगवान् ने भीम, भास, दट के अन्तःपुर्यष्टक में प्रवेश किया और उनकी चित्तकला जो प्राण से मिश्रित थी उसको अस्त किया । पुर्यष्टक फुरने से निर्वाण हुई । आगे वे जीवन्मुक्त थे सो अब विदेहमुक्त हुए । हे रामजी! वे भीम,भास, दट निर्वासिनक थे इस कारण बुझे दीपकवत् निर्वाण हो गये । जो वासना संयुक्त है वह बन्धवान् जो निर्वासनिक है वह मुक्तरूप है तुम भी विवेक से निर्वासनिक हो । जब यह निश्चय होता है कि सब जगत् असत्‌रूप है तब वासना नहीं फुरती, इससे यथार्थ देखना कि किसी जगत् के पदार्थ में आसक्त बुद्धि न हो वासना और चित्त एक ही वस्तु के नाम हैं, सर्व पदार्थों के शब्द और अर्थ चित्त में स्थित हैं । जब सत् का अवलोकन सम्यक्‌ज्ञान होगा तब यह लय हो जावेगा और परमपद शेष रहेगा । जो चित्त वासना संयुक्त है उसमें अनेक पदार्थों की तृष्णा होती है । जो मुक्त है उसे ही मुक्त कहते हैं और नाना प्रकार के घट पटादिक आकार चित्त के फुरने से अनेकता को प्राप्त होते हैं । जैसे परछाहीं से वैतालभ्रम होता है तैसे ही नानात्वभ्रम चित्त में भासता है । हे रामजी! जैसी जैसी वासना को लेकर चित्त स्थित होता है तैसा ही

आकार निश्चय होकर भासता है । दाम, व्याल, कट का रूप चित्त के परिणाम से विपर्यय हो गया था , तुमको भीम, भास, दट का निश्चय हो, दाम, व्याल, कट का निश्चय न हो । हे रामजी! यह वृत्तान्त मुझसे पूर्व में ब्रह्माजी ने कहा था वही मैंने अब तुमसे कहा है । इस संसार में कोई बिरला सुखी है, दुःख दशा में अनेक हैं जब तुम इस संसार की भावना त्यागोगे तब देहादिक में बन्धवान् न होगे और व्यवहार में भी आत्मसत्ता न होगी

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दाम, व्याल, कटोपाख्यानसमाप्ति वर्णनन्नाम चतुस्त्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३४॥

अनुक्रम

उपशमरूपवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्या से संसार की ओर जो मन सम्मुख हुआ है उसको जिस पुरुष ने जीता है वही सुखी और शूरमा है और उसही की जय है । यह संसार सर्व उपद्रव का देने वाला है । इसका उपाय यही है कि अपने मन को वश करे । यह मेरा शास्त्र सर्वज्ञान से युक्त है, इसको सुनके आपको विचारे कि यह जगत् क्या है? ऐसे विचारकर भोग से उपराम होना और सत्स्वरूप आत्मा का अभ्यास करना । जो कुछ भोग इच्छा है वह बन्धन का कारण है, इसके त्यागने को मोक्ष कहते हैं और सब कुछ शास्त्रों का विस्तार है । जो विषयभोग हैं उनको विष और अग्नि की नाईं जाने । जैसे विष और अग्नि नाश का कारण हैं तैसे ही विषयभोग भी नाश का कारण हैं । ऐसे जान के इनका त्याग करे और बारम्बार यही विचार करे कि विषय भोग विष की नाईं है । ऐसे विचार के जब विषयों को चित्त से त्यागोगे तब सेवते हुए भी ये दुःखदायक न होंगे । जैसे मन्त्रशक्तिसम्पन्न को सर्प दुःखदायक नहीं होती तैसे ही त्यागी को भोग दुःखदायक नहीं होते । इससे संसार को सत् जानके वासना फुरती है सो दुःख का कारण है–जैसे पृथ्वी में जो बीज बोया जाता है सो ही उगता है, कटुक से कठुक उपजता है, मिष्ट से मिष्ट उपजता है; तैसे ही जिसकी बुद्धि में संसार के भोग वासनारूपी बीज हैं उससे दुःख की परम्परा उत्पन्न होती है और जिसकी बुद्धि में शान्ति की शुभ वासना गर्भित होती है उससे शुभ गुण, वैराग्य,,धैर्य, उदारता और शान्तिरुप उत्पन्न होते हैं । जब शुभ वासना का अनु सन्धान होगा तब मन बुद्धि निर्मल भाव को प्राप्त होगी और जब मन निर्मल हुआ तब शनैः शनैः अज्ञान नष्ट हो जावेगा और सज्जनता बुद्धि होगी । जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कला बढ़ती जाती है । जब इन शुभ गुणों की परम्परा स्थित होती है तब विवेक उत्पन्न होता है और उसके प्रकाश से हृदय का मोहरूपी तम नष्ट हो जाता है तब धैर्य और उदारता की वृद्धि होती है । जब सत्संग और सत्शास्त्र के अभ्यासद्वारा शुभगुण उदय होते हैं तब महा आनन्द का कारण शीतल शान्तरूप प्रकट होता है । जैसे पूर्णमासी के चन्द्रमा की कान्ति आनन्ददायक शीतलता फैलाती है तैसे ही सत्संगरूपी वृक्ष का फल प्राप्त होता है । हे रामजी! सत्संगरूपी वृक्ष से विवेकरूपी फल उत्पन्न होता है और उस विवेक रूपी फल से समतारूपी अमृत स्रवता है, उससे मन निर्द्वन्द्व और सर्वकामना से रहित निरुपद्रव होता है । मन की चपलता शोक और अनर्थ का कारण है, मन के अचल हुए सब शान्त हो जाता है । शास्त्र के अर्थ धारने से सन्देह नष्ट हो जाते हैं और नाना प्रकार की कल्पना जाल शान्त हो जाती है । इससे जीवन्मुक्त अलेप होता है, संसार का कोई क्षोभ उसको स्पर्श नहीं करता और वह निरीच्छित,निरुपस्थित, निर्लेप, निर्दुःख होता है । शोक से रहित हुआ चित्त जड़ग्रन्थि से मुक्त और परमानन्दरूप होता है । तृष्णारूपी सूत्र के जाल से जो पुरुष निकल गया है वही शूरमा है और जिस पुरुष ने तृष्णा नष्ट नहीं की वह अनेक जन्म दुःख में भ्रमता है । जब तृष्णा घटती है तब मन भी सूक्ष्म हो जाता है और जब भोग की तृष्णा नष्ट होती है तब मन भी नष्ट हो जाता है । हे रामजी! जैसे भले नौकर स्वामी के निमित्त रण में शरीर को तृणवत् त्यागते हैं और उससे स्वामी की जय होती है पर जो दुष्ट हैं वे नहीं त्यागते उससे दुःखी होते हैं, तैसे ही मन का उदय होना जीवों को दुःख का कारण है और मन का नष्ट होना सुखदायक है । ज्ञानवान् का मन नष्ट हो जाता है, अज्ञानी का मन वृद्धि होता है । सम्पूर्ण जगत् चक्र मनोमात्र है, यह पर्वत, मण्डल, स्थावर, जंगमरूप जो कुछ जगत् है वह सब मनरूप है । मन किसको कहते हैं सो सुनो, चिन्मात्र शुद्धकला में जो चित्तकला का फुरना हुआ है वही संवेदन संकल्प विकल्प से मिलकर मलीन हुआ है और स्वरूप विस्मरण हो गया है, उसी का नाम मन है । वही मन वासना से संसार भागी होता है । जब चित्त संवेदन दृश्य से मिलता है

तब उससे तन्मय होकर चित्त संवित् का नाम जीव होता है और वही जीव दृश्य वेग से मिलके संसार दशा में चला जाता है और अनेक विस्तार को प्राप्त होता है आत्मपुरुष परब्रह्म संसारी नहीं, वह न रुधिर है, न माँस है और न शरीर है । शरीरादिक सर्व जड़रूप हैं, आत्मा चेतन आकाशवत् अलेप है । यदि शरीर को भिन्न भिन्न कर देखिये तो रुधिर, माँस, अस्थि से भिन्न कुछ नहीं निकलता । जैसे केले के वृक्ष को खोलकर देखिये तो पत्रों से भिन्न कुछ नहीं तैसे ही मन ही जीव है और जीव ही मन है, मन से भिन्न आकार कोई नहीं वही सर्वविकार को प्राप्त होता है । हे रामजी! जीव के बन्धन का कारण अपनी कल्पना है । जैसे कुसवारी अपने यत्न से आप ही बन्धन को प्राप्त होती है तैसे ही मनुष्य अपनी वासना से आप ही संसारबन्धन में फँसता है इससे तुम भोग की वासना मन से दूर करो, संसार का बीज वासना ही है । जिस वासना संयुक्त दिन में विचरता है तैसा ही स्वप्ना भी होता है । जैसे वासना होती है तैसा ही पुण्य पाप के अनुसार परलोक भासता है अपनी ही वासना से जगत् भास आता है । जैसे अन्न जिस द्रव्य से मिलता है तैसा ही भासता है अर्थात् मिष्ट से मिष्टा, ख` े से ख ा, कटुक से कटुक होता है तैसे ही जैसी वासना जिसके हृदय में दृढ़ होती है तैसे ही हो भासता है। जैसे बड़े पुण्यवान् को स्वप्न में अपनी मूर्ति इन्द्र की भासती है, नीच को नीच ही भासती है और भूत के संगी को भूतादिक भास आते हैं तैसे ही वासना के अनुसार परलोक भास आता है । जब मन में निर्मल भाव स्थित होता है तब मन की कल्पना और पापवासना मिटजाती है और जब मन में मलीन वासना बढ़ती है तब निर्मलता नहीं भासती वही रूप फल प्राप्त होता है । इससे तुम दुर्वासना कलंक को त्यागके पूर्णमासी के चन्द्रमावत् विराजमान हो। यह संसार भ्रान्तिमात्र है सत्रूप नहीं । अज्ञान करके भेदविकार भासते हैं, वास्तव में न कोई बन्ध है न मोक्ष है और न कोई बन्ध करनेवाला है, सब इन्द्रजाल की नाईं मिथ्या भ्रम भासते हैं । जैसे गन्धर्वनगर, मृगतृष्णा का जल और आकाश में दूसरा भासता है वह असत्रूप है, तैसे ही यह जगत् असत्रूप है । जीवों को अज्ञान से ऐसा निश्चय हो रहा है कि मैं अनन्त आत्मा नहीं हूँ–नीच हूँ–जब इस निश्चय का अभाव हो और निश्चय का अभाव हो और निश्चय करके आपको अनन्त आत्मा जाने प्रथम इसका अभ्यास करे–तब हृदय में स्थित हो । इस निश्चय से उस नीच निश्चय का अभाव हो जाता है । सर्व जगत् स्वच्छ निर्मल आत्मा है, उससे अतिरिक्त जिसको देहादिक भावना हुई है उसको लोकमें बन्धन होता है और अपने संकल्प से आपही शुक्र की नाईं बन्धन में आता है । जिसको स्वरूप में भावना होती हे उसको मोक्ष भासता है । आत्मसत्ता मोक्ष और बन्ध दोनों से रहित है । एक और अद्वैत ब्रह्मसत्ता अपने आपमें स्थित है । जब मन निर्मल होता हे तब इस प्रकार भासता है और किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता और जब मन इस भाव से रहित अमन होता है तब ब्रह्मसत्ता को देखता है अन्यथा नहीं देखता । जब वैराग्य और अभ्यासरूपी जल से मन निर्मल होता है तब ब्रह्मज्ञानरूपी रंग चढ़ता है और सर्व आत्मा ही भासता है और जब सर्वात्मभावना होती है तब ग्रहण और त्याग की वृत्ति नष्ट हो जाती है । और बन्धमोक्ष भी नहीं रहता । जब मन के कषाय परिपक्व होते हैं अर्थात् भोग की सूक्ष्म वासना से मुक्त होता है और सत्शास्त्र के विचार से क्रम से बुद्धि में वैराग्य उपजता है तब परमबोध को प्राप्त होता है और कमल की नाईं बुद्धि खिल आती है । मन ने ही सर्व पदार्थ रचे हैं जब उससे मिलकर तद्रूप हो जाता है उसका नाम असम्यक् ज्ञान है और जब सम्यक् दृष्टि होती है तब उसका तत्काल नाश करता है । जब भीतर बाहर दृश्य को त्याग करता है और मन सत् भाव में स्थित होता है तब परमपद को प्राप्त हुआ कहाता है । हे रामजी! ये दृष्टा और दृश्य जो स्पष्ट भासते हैं वे असत् हैं । उन असत् के साथ तन्मय हो जाना यह मन का रुप है जो पदार्थ आदि अन्त में न हो और मध्य में भासे उसको असत् रूप जानिये, सो यह दृश्य आदि में भी नहीं उपजा और अन्त में भी नहीं रहता, मध्य में जो भासता है वह

असत्‌रूप है । अज्ञान से जिनको यह सत्‌ भासता है उनको दुःख की प्राप्ति होती है । आत्मभावना बिना दुःख निवृत्त नहीं होता । जब दृश्य में आत्मभावना होती है तब दृश्य भी मोक्षदायक हो जाता है । जल और है तरंग और है, यह अज्ञानी का निश्चय है । जल और तरंग एक ही रूप है, यह ज्ञानी का निश्चय है । नानारूप जगत्‌ अज्ञानी को भासता है उससे दुःख पाता है और ग्रह्ण और त्याग की बुद्धि से भटकता है । ज्ञानी को सर्व आत्मा भासता है और भेदभावना से रहित अन्तर्मुख सुखी होता है । हे रामजी! नानात्व मन के फुरने से रचा है और मन का रूप है अपने संकल्प का नाम मन है सो असत्‌ रूप है । जो असत्‌ विनाशीरूप है उसको सत्‌ मानने से क्लेश होता है । जैसे किसी का बान्धव परदेश से आता है और उसको वह नहीं पहिचानता अतः उसमें राग नहीं होता, पर जब उसमें अपने की भावना करता है तब राग भी होता है, तैसे ही जब आत्मा में अहं प्रतीति होती है और देहादिक में नहीं होती तब देहादिक सुख दुःख स्पर्श नहीं करते और जब देहादिक में भावना होती है तब स्पर्श करते हैं । हे रामजी! जब शिव तत्त्व का ज्ञान हो तब कोई दुःख नहीं रहता वह शिव दृष्टा और दृश्य के मध्य में व्यापक है, उसमें स्थित होकर मन शान्त हो जाता है । जैसे वायु से रहित धूल नहीं उड़ती तैसे ही मन के शान्त हुए देहरूपी धूल शान्त हो जाती है और फिर संसाररूपी कुहिरा नहीं रहता ।जब वर्षा ऋतुरूपी वासना क्षीण हो जाती है तब जाना नहीं जाता कि जड़तारूपी बेल कहाँ गई । जब अज्ञानरूपी मेघ शान्त हो जाता है तब तृष्णारूपी बेल सूख जाती है और हृदयरूपी पवन से मोहरूपी कुहिरा नष्ट हो जाता है जैसे प्रातःकाल हुए रात्रि नष्ट हो जाती है । अज्ञानरूपी मेघ के क्षीण हुए देहाभिमानरूपी जड़ता जानी नहीं जाती कि कहाँ गई । जब तक अज्ञानरूपी मेघ गर्जता है तब तक संकल्परूपी मोर नृत्य करते हैं और जब अहंकार रूपी मेघ नष्ट हो जाता है तब परम निर्मल चिदाकाश आत्मारूपी सूर्य स्वच्छ प्रकाशता है । जब मोहरूपी वर्षाकाल का अभाव होता है तब ज्ञानरूपी शरत्काल में दिशा निर्मल हो जाती हैं और आत्मारूपी चन्द्रमा शीतल चाँदनी से प्रकाशता है । जो सर्व सम्पदा का देने और परमानन्द की प्राप्ति करनेवाला है । जब प्रथम शुभगुणों से विवेकरूपी बीज संचित होता है तब शुभ मन सर्वसम्पदा का देने वाला परमानन्द अति सफल भूमि को प्राप्त होता है । उस विवेकी पुरुष को वन, पर्वत, चतुर्दश भुवन सर्व आत्मा ही भासता है और वह निर्मल से निर्मल और शीतल से शीतल भावना में भासता है हृदयरूपी तालाब अति विस्तारवान्‌ है और स्फटिकमणिवत्‌ उज्ज्वल स्वच्छ जल से पूर्ण है उसमें धैर्य और उदारतारूपी कमल विराजते हैं और उस हृदयकमल पर अहंकाररूपी भँवरा विचरता है । वह जब नष्ट होता है तो फिर नहीं उपजता । वह पुरुष निरपेक्ष, सर्वश्रेष्ठ, निर्वासनिक, शान्तिमय अपने देहरूपी नगर में विराजमान ईश्वर होता है । जिसको आत्मप्रकाश उदय हुआ है उस बोधवान्‌ का मन अत्यन्त गल जाता है, भय आदिक विकार नष्ट हो जाते हैं और देहरूपी नगर विगतज्वर होके विराजमान होता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे उपशमरूपवर्णनन्नाम पञ्चत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३५॥

अनुक्रम

चिदात्मरूपवर्णन

रामजी बोले, हे भगवन्! आत्मा तो चेतनरूप विश्व से अतीत है, उस चिदात्मा में विश्व कैसे उत्पन्न हुआ? बोध की वृद्धि के निमित्त फिर मुझसे कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जैसे सोम जल में तरंग अव्यक्तरूप होते हैं परन्तु त्रिकालदर्शी को उनका सद्भाव नहीं भासता और उनका रूप दृष्टमात्र होता है तैसे ही आत्मा में जगत् संकल्प मात्र होता है । जैसे आकाश सर्वगत है परन्तु सूक्ष्मभाव से नहीं दीखता तैसे ही आत्मा निरंश, निराकार सर्वगत और सर्वव्यापक है परन्तु लखा नहीं जाता अव्यक्त और अच्युतरूप है, उस आत्मा में जगत् ऐसे है जैसे कोई थम्भ हो और उसमें शिल्पी कल्पना करे कि इतनी पुतलियाँ इसमें हैं । सो वह क्या है, कुछ नहीं, केवल शिल्पी के मन में फुरती हैं तैसे ही यह जगत् आत्मा में मनरूपी शिल्पी ने कल्पा है सो आत्मा का आधार है और आत्मा के आश्रय आत्मा में स्थित है और आत्मा कदाचित उससे स्पर्श नहीं करता । जैसे मेघ आकाश के आश्रय आकाश में स्थित है परन्तु आकाश उससे स्पर्श नहीं करता तैसे ही आत्मा अस्पर्श है और सर्वत्र पूर्ण है परन्तु हृदय में भासता है । जैसे सूर्य का प्रकाश सब ठौर व्यापक है । परन्तु जल में प्रतिबिम्बित होता है और पृथ्वी, काष्ठ इत्यादि में प्रतिबिम्ब नहीं होता तैसे ही आत्मा का देह इन्द्रिय और प्राण में प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता हृदय में भासता है । वह आत्मा सर्वसंकल्प और संग से रहित स्वरूप है, उसको ज्ञानवान् पुरुष उपदेश के निमित्त चैतन्य, अविनाशी, आत्मा, ब्रह्मादिक कहते हैं पर आकाश से भी सूक्ष्म निर्मल है । आत्मा आभास से जगत्रूप हो भासता है, जगत् कुछ और वस्तु नहीं है । जैसे जल द्रवता से तरंगरूप हो भासता है परन्तु तरंग कुछ भिन्न वस्तु नहीं है, तैसे ही आत्मा से व्यतिरेक नहीं, चेतनसत्ता ही चैत्यता फुरने से जगत्रूप हो भासती है । जो ज्ञानवान् पुरुष है उसको तो एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना प्रकार जगत् भासता है । जगत् कुछ वस्तु नहीं है केवल आत्मसत्ता ही अपने आपमें स्थित है, अनुभव स्वभाव से प्रकाशता है और सूर्यादिक सबको प्रकाशनेवाला है । सब स्वादों का स्वाद वही है और सब भाव उसी से सिद्ध होते हैं । वह सत्ता उदय, अस्त और चलने, न चलने से रहित है, वह न लेता है, न देता है अपने आपमें स्थित है । जैसे अग्नि लपटरूप और जल तरंगरूप हो भासता है तैसे ही आत्मसत्ता जगत्रूप हो भासती है और जीव अपने संवेदन फुरने से नाना प्रकार के संकल्प से विपर्ययरूप देखता है कि यह मैं हूँ, यह और है इत्यादिक, पर जब अपने आपको जानता है तब अज्ञानभ्रम नष्ट हो जाता है । जैसे वृक्ष में बीजसत्ता परिणाम से आकार के आश्रय बढ़ता जाता है, तैसे ही आत्मसत्ता में चित्त संवेदन फुरता है । फुरना जो आत्मसत्ता के आश्रय विस्तार को प्राप्त होता है सो संकल्परूप है और उसमें जगत् की दृढ़ता है,जैसे संवेदन फुरता है तैसे ही स्थित होता है । उसमें नीति है कि जो पदार्थ जिस प्रकार हो सो तैसे ही स्थित है अन्यथा नहीं होता । जैसे वसन्तऋतु में रस अति विस्तार पाता है, कार्त्तिक में धान उपजते है, हिमऋतु में जल पाषाणरुप हो जाता है, अग्नि उष्ण है, बरफ शीतल है इत्यादिक जितने पदार्थ रचे हैं वैसे ही वे सब महाप्रलय पर्यन्त स्थित हैं, अन्यथा भाव को नहीं प्राप्त होते । जगत् में चतुर्दश प्रकार के भूतजात हैं पर उनमें जिनको आत्मज्ञान प्राप्त होता है वे ही शान्तरूप आत्मा पाके आनन्दवान् होते हैं और जिनको प्रमाद है वे भटकते और जन्ममरण को प्राप्त होते हैं । जैसे–जैसे कर्म वे करते हैं तैसी–तैसी गति पाते हैं और आवागमन में भटकते–भटकते यम के मुख में जा पड़ते हैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लय हो जाते हैं तैसे ही जन्न–जन्म उपजते हैं मरते जाते हैं । उन्मत्त की नाईं प्रमादी भ्रमते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे चिदात्मरूपवर्णनन्नाम षट्त्रिंशमत्तस्सर्गः ॥३६॥

अनुक्रम

शान्त्युपदेशकरण

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जगत् की स्थित है सो सब चञ्चल आकार और विपरिणामरूप है । जैसे समुद्र में तरंग चञ्चलरूप हैं तैसे ही जगत् की गति चञ्चल है। आत्मा से जगत् स्वतः उपजता है, किसी कारण से नहीं होता, और पीछे कारण कार्य भाव हो जाता है और वही चित्त में दृढ़ हो भासता है, आत्मा मैं यह कोई नहीं । जैसे जल से तरंग स्वाभाविक उठकर लय हो जाते हैं, तैसे ही आत्मा से स्वाभाविक जगत् उपज के लय होते हैं । जैसे ग्रीष्म ऋतु में तपन से मरुस्थल जल की नाईं स्पष्ट भासता है पर जल कुछ भी नहीं है और जैसे मद से मत्त पुरुष आपको और का और जानता है, तैसे ही ये पुरुष आत्मरूप हैं चित् से आपको देवता, मनुष्य आदिक शरीर जानते और कहते हैं । हे रामजी! यह जगत् आत्मा मैं न सत् है,न असत् है, जैसे सुवर्ण में भूषण हैं तैसे ही मूढ़ जीव आपको आकार मानते हैं । इससे तुम दृश्य को त्याग के दृष्टा में स्थित हो और जिससे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदिक सबको जानता है उसी को आत्मब्रह्म जानो, वह सर्व में पूर्ण स्थित, स्वच्छ और निर्मल है । आत्मसत्ता में एकद्वैत कल्पना कुछ नहीं । जब तक आत्मा से भिन्न कुछ वस्तु भासती है तब तक वासना उसकी ओर धावती है । हे रामजी! आत्मा से व्यतिरेक कुछ सिद्ध नहीं होता तो किसकी वाञ्छा करे, किसका अनुसन्धान करे और किसका ग्रहण त्याग करे? आत्मा को ईप्सित, अनीप्सित, इष्ट, अनिष्ट आदिक कोई विकार विकल्प स्पर्श नहीं करता और कर्त्ता, करण, कर्म तीनों की एकता है, न कोई आधार है, न आधेय है, द्वैत कल्पना का असंभव है और अहं त्वं आदिक कुछ नहीं, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है । ऐसे जानके सर्वदा निर्द्वन्द्व होकर सर्वसन्ताप से रहित कार्य में प्रवृत्त हो जाओ । पूर्व जो तुमने कुछ किया और नहीं किया, उस करने और न करने से तुमको क्या सिद्ध हुआ और पाने योग्य कौन पद पाया और भूतों की गिनती में क्या बात है? तुम आपको हृदय में अकर्त्ता की भावना करो और बाहर से इन्द्रियों से जगत् के कार्य करो, जब स्थिरतारूपी समुद्र में तुम्हारी वृत्ति धैर्यवान् होगी तब शान्तात्मा होगे, पर दृश्य जगत् में तो दूर से दूर भी गये हृदय में शान्ति नहीं होती । जहाँ चाहे वहाँ जावे और चाहे जैसे पदार्थ पाने का यत्न करे पर उसके पाये से भी शान्ति प्राप्त न होगी । जगत् के सर्व दृश्य पदार्थ त्यागकर जो शेष अपना स्वरूप रहता है वही चिदात्मा है । उसमें स्थित हुए से शान्ति प्राप्त होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे शान्त्युपदेशकरणन्नाम सप्तत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३७॥

अनुक्रम

मोक्षोपदेश

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो ज्ञानी पुरुष हैं उसमें कर्त्तव्य भाव भी दृष्टि आता है और हिंसादिक तामसी कर्म भी करते हैं तो भी स्वरूप के ज्ञान से वे अकर्ता ही हैं उन्होंने कदाचित् कुछ नहीं किया और जो मूढ़ अज्ञानी हैं वे जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल भोगते हैं । मन में सत्य जानके जिस पदार्थ के ग्रहण की इच्छा करता है सो फुरना वासनारुप होता है उसी सद्भाव फुरने का नाम कर्तव्य है और उसी चेष्टा से फल की प्राप्ति होती है । जिस पदार्थ को सत् जानके वासना फुरती है उसका अनुभव होता है, शरीर करे अथवा न करे पर जैसी वासना मन में दृढ़ होती है वह शुभ हो अथवा अशुभ उसी के अनुसार दृश्य भासि आता है । शुभ से स्वर्ग भासता है और अशुभ से नरक भासता है । जिस पुरुष को आत्मा का अज्ञान है यद्यपि वह प्रत्यक्ष अकर्ता है तो भी अनेक कर्म के फल को अनुभव करता है और जो ज्ञानवान् हैं उनके हृदय में पदार्थों का सद्भाव और वासना दोनों नहीं होती क्योंकि उनमें कर्तव्य का अभाव है । यद्यपि वे करते हैं तो भी कर्तव्य के फल को नहीं प्राप्त होते । और संसार को असत्य जानते हैं, केवल शरीर का स्पन्दमात्र उनका कर्म है, हृदय से बन्धवान् नहीं होते । पूर्व के प्रारब्ध से सुख–दुःख फल उनको प्राप्त भी होता है परन्तु वे आत्मा से भिन्न उसको नहीं जानते, वे ब्रह्म ही देखते हैं और जो अज्ञानी हैं वे अवयव के स्पन्द में आपको कर्त्ता मानते हैं और उसके अनु सार सुख–दुःख भोगते और मोह को प्राप्त होते हैं । जिनका मन अनात्मभाव में मग्न है वे अकर्त्ता हुए भी कर्ता होते हैं और मन से रहित केवल शरीर से किया हुआ कर्म किया भी न किया है । इससे मन ही कर्ता है शरीर कुछ नहीं करता । यह सब जगत् मन से उपजा है, मनरूप है और मन ही में स्थित है जिसका मन अमनभाव को प्राप्त हुआ है उसको सब शान्तरूप है । जैसे तीक्ष्ण धूप से मृगतृष्णा की नदी भासती है और जब वर्षा होती है तब शान्त हो जाता है और संसार के सुख–दुःख स्पर्श नहीं करते । न वह चञ्चल है, न सत्य है और न असत्य है, सर्वविकार से रहित शान्तरूप है । वह संसार की वासना में नहीं डूबता पर अज्ञानी डूबता है, क्योंकि उसका मन संसारभ्रम में मग्न रहता और सदा पदार्थों की तृष्णा करता है, ज्ञानी नहीं करता । हे रामजी! और दृष्टान्त सुनो कि अज्ञानी को अकर्तव्य में भी कर्तव्य है और ज्ञानी को कर्तव्य में अकर्तव्य है । जैसे कोई पुरुष शय्या पर सोया हो और स्वप्न में गिर करके दुःख पावे तो वह अकर्तव्य में कर्तव्य हुआ और जैसे समाधि में स्थित होकर गढ़े में गिरा है पर उसको सर्व शान्त रूप है, यह कर्तव्य में भी अकर्तव्य हुआ, क्योंकि शय्या पर सोया था उसका मन चलता था इससे अकर्तव्य में उसको कर्तव्य हुआ और दुःख का अनुभव करने लगा और दूसरे को सुख का अनुभव हुआ । इससे यह निश्चय हुआ की जैसा मन होता है तैसे ही सिद्धता प्राप्त होती है । तुम भी असंसक्त होकर कर्म करो तब अकर्त्ता हो रहोगे । जो कुछ जगत् भासता है वह आत्मा से व्यतिरेक नहीं । जिसको यह निश्चय होता है उस ज्ञानवान् को सुख–दुःख स्पर्श नहीं करते, उसे आधार, आधेय, दृष्टा, दर्शन, दृश्य, इच्छा, आत्मा से भिन्न कुछ नहीं भासता जब ऐसे निश्चय होता है कि मैं देह नहीं, सब पदार्थों से व्यतिरेक और बाल के अग्र के सौवें भाग से भी सूक्ष्म हूँ अथवा जो कुछ दृश्य जगत् है सो सर्व मैं ही हूँ , सर्वतत्त्व का प्रकाशक और सर्वव्यापी हूँ, इस निश्चय से उसको सुख–दुःख का क्षोभ नहीं होता और विगतज्वर होकर स्थित होता है । यद्यपि दुःख और संकट ज्ञानवान् को भी आ प्राप्त होते हैं तो भी उसको वास्तव से नहीं भासते वह परमानन्द से आनन्दवान् लीला मात्र विचरता है । जैसे चन्द्रमा की चाँदनी शीतल प्रकाशित होती है तैसे ही वह पुरुष शीतल प्रकाशवान् होता है, उसको न चिन्ता होती है, न कोई दुःख है । वह शान्तरूप कर्म को कर्त्ता भी है पर अकर्त्ता है, क्योंकि मन से सदा अलेप

रहता है । हे रामजी! हस्त, पादादिक इन्द्रियों से करने का नाम कर्म नहीं मन के करने का नाम कर्म है । मन ही सब कर्मों का कर्त्ता है । 'अहं' 'त्वं' सब भाव सब लोकों का बीज, सर्वगत मन है । जब मन नाश हो तब सब कर्म नष्ट हो जाते हैं और सब दुःख मिट जाते हैं । जैसे बालक मन से नगर रचे और फिर लीन कर ले तो उसको उपजाने और लीन करने में हर्ष शोक कुछ नहीं होता तैसे ही तैसे ही परमार्थदर्शी को किसी कर्म का लेप नहीं होता, वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता और उसमें कर्तव्य, भोक्तव्य, सुख, दुःख अज्ञानी मोह से अध्यारोप करते हैं और कुछ नहीं । ज्ञानवान् को बन्ध, मोक्ष, सुख, दुःख कुछ नहीं भासता, क्योंकि वह असंसक्त मन है । जिसका मन आसक्त है उसको नाना दृश्य भासता है और ज्ञानवान् का केवल आत्मसत्ता, जो एक द्वैत कलना से रहित है, भासती है । जैसे जल से तरंग भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से जगत् भिन्न नहीं । न कोई बन्ध है, न कोई मोक्ष है, न कोई बाँधने योग्य है, अज्ञानदृष्टि से दुःख है, बोध से लीन हो जाते हैं । बन्ध और मोक्ष संकल्प से कल्पित मिथ्यारूप हैं । तुम इस मिथ्या कल्पना अनात्म अहंकार को त्यागके आत्मा निश्चय करो और धीर बुद्धिमान होकर प्रकृत आचार को करो तब तुम्हें कुछ स्पर्श न करेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपदेशो नाम अष्टत्रिंशत्तमस्सर्गः ॥३८॥

अनुक्रम

सर्वैकताप्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! सच्चिदानन्द, अद्वैत, निर्विकारादिक गुणों से सम्पन्न ब्रह्मत्त्व में अविद्यामान विचित्र जगत् और अविद्या कहाँ से आई? वशिष्ठजी बोले, हे राजपुत्र! यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मस्वरूप है और ब्रह्मसत्ता सर्वशक्ति है, इस कारण दृश्यरूप हो रहा है और सत्य, असत्य, एक, अद्वैत आदिक विश्वरूप भासता है जैसे जल में जल उल्लासरूप नाना प्रकार के तरंग, बुद्बुदे, आवृत्त आकार हो भासता है तैसे ही चिद्घन में चिद्घन सर्वशक्ति और सर्वरूप होकर फुरता है । कहीं कर्मरूप, कहीं वाणीरूप,कहीं गूंगेरूप, कहीं मनरूप और कहीं भरण, पोषण और नाश का कारण होता है । सब पदार्थों का बीज उत्पन्नकर्त्ता ब्रह्मसत्ता है, जैसे समुद्र से तरंग उपजकर उसी में लय हो जाते हैं तैसे ही सब पदार्थ उपजकर ब्रह्म में लय होते हैं । रामजी ने फिर पूछा कि हे भगवन्! आपके वचन का उच्चार प्रकट है तो भी कठिन और अति गम्भीर है, इनका तोल नहीं पाया जाता और इनका यथार्थभाव मैं पा नहीं सकता । कहाँ मन संयुक्त षट् इन्द्रियों की वृत्तियों से और सब पदार्थ की रचना से रहित स्वरूप और कहाँ जगत्? जो पदार्थ जिससे उपजता है वह उसी का रूप होता है । जैसे दीपक से उपजा दीपक, मनुष्य से मनुष्य और अग्नि से अग्नि होता है, इसी प्रकार कारण से जो कार्य उपजता है सो भी उसी के सदृश होता है । तैसे ही जो निर्विकार आत्मा से जगत् उपजा है वह भी निर्विकार होना चाहिये पर वह तो ऐसे नहीं, आत्मा निर्विकार और शान्तिरूप है और जगत् विकारी और दुःखरूप है, उससे कलंकरूप जगत् कैसे उपजा? इतना कह वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार रामजी ने कहा तब ब्रह्मऋषि बोले कि हे रामजी! यह सब जगत् ब्रह्मरूप है पर नाना प्रकार मलीनरूप जो भासता है सो मलीनता सत् नहीं । जैसे तरंग के समूह समुद्र में फुरते हैं सो मलीनतारूप धूल नहीं है, वही रूप है, तैसे ही आत्मा में जगत् कुछ कलंक नहीं है वही रूप है । जैसे अग्नि में उष्णता अग्निरुप है तैसे ही आत्मा में जगत् आत्मारूप है, भिन्न नहीं । रामजी ने फिर पूछा कि हे ब्रह्मन! निर्दुःख और निर्धर्म से जो यह दुःखरुप जगत् उपजा है यही कलंक है । आपके वचन प्रकाशरूप हैं और मुझे स्पष्ट नहीं भासते । मैं इसको नहीं जान सकता । तब मुनिशार्दूल वशिष्ठजी ने विचारा कि परम प्रकाश को अभी इसकी बुद्धि नहीं प्राप्त हुई, कुछ निर्मल हुई है और पद पदार्थ को जानता है परन्तु परमार्थवेत्ता नहीं हुआ । जिसको परमार्थ बोध प्राप्त होता है और जिसका मन शान्त होता है, वह ज्ञात ज्ञेय पुरुष मोक्ष उपाय की वाणी के पार प्राप्त होता है और संसाररूपी अविद्या मल उसको नहीं भासता ।वह केवल अद्वैत सत्ता देखता है । जब तक मैं और उपदेश रामजी को न करूँगा तब तक इसको विश्राम न होगा । जो अर्ध्द-प्रबुद्ध है उसको सब ब्रह्म ही कहना नहीं शोभता, क्योंकि उसका चित् भोगोंसे सर्वथा व्यतिरेक नहीं हुआ । सर्वब्रह्म के वचन सुनके वह भोगों में आसक्त होगा जो नाश का कारण है । जिसको परमदृष्टि प्राप्त हुई है उसको भोग की इच्छा नहीं उपजती । इससे सर्वब्रह्म का कहना रामजी को सिद्धान्त काल में शोभेगा । गुरु को शिष्य के प्रति प्रथम सर्वब्रह्म कहना नहीं बनता । प्रथम शम-दम आदिक गुणों से शिष्य को शुद्ध को शुद्ध करे फिर सर्वब्रह्म शुद्ध तू है ऐसे उपदेश करे तो उससे वह जाग उठता है । जो अज्ञानी अर्द्धप्रबुद्ध है उसको ऐसा उपदेश करने वाला गुरु उसको महानरक में डालता है जो प्रबुद्ध है उसकी भोग की इच्छा क्षीण हो जाती हे और वह निष्काम पुरुष है इसको उससे अविद्यारूपी मल नहीं रहता और उसको उपदेश करने की आवश्यकता नहीं । इस प्रकार विचार कर अज्ञानरूपी तम के नाशकर्त्ता और ज्ञान के सूर्य भगवान् वशिष्ठजी ने रामजी के प्रति कहा । वशिष्ठजी बोले, हे राघव,! कलनारूप कलंक ब्रह्म में है वा नहीं है, यह मैं तुमसे सिद्धान्तकाल में कहूँगा अथवा तुम आपही जानोगे । ब्रह्मसत्ता सब शक्ति रूप सर्वव्यापक

(सर्वगत) है और सब उसी में रचे हैं । जैसे इन्द्रजाली विचित्र शक्ति से अनेकरूप रचता है और सत्य को असत्य और असत्य को सत्य कर दिखाता है तैसे ही आत्मा मायावी परम इन्द्रजाली अघटन घटना है अर्थात् जो न बने उसको भी बनाती है वह शक्ति से पहाड़ को गढ़ा करता है बेल में पाषाण लगाता है और पाषाण में बेल लगाता है । वन की पृथ्वी को आकाश करता है और आकाश को पृथ्वी करता है, और आकाश में वन लगाता है–जैसे आकाश में गन्धर्वनगर भासता है, वन को आकाश करता है– जैसे पुरुष की छाया आकाश हो जाती हे और आकाश को पृथ्वीभाव प्राप्त करता है– जैसे रत्न की कन्दरा पृथ्वी पर हो और उसमें आकाश का प्रतिबिम्ब पड़े । हे रामजी! यह विचित्ररूप दृश्य जो तुमसे कहा है सो शुद्ध अव्यक्ततत्त्व–अचैत्य–चिन्मात्र में जो चेतनता का लक्षण जानना है उसी ने रचा है और कैसा रचा है कि वही चित्त संवेदन फुरने से जगत्‌रूप हो भासता है । उसमें सब प्रकार और सर्वरूप वही है जो एकरूप अविद्यमान् है तो हर्ष, शोक और आश्चर्य किसका मानिये? यह अन्यथा कोई नहीं, सब एकरूप है । इसी कारण हम को समताभाव रहता है और हर्ष, शोक, आश्चर्य और मोह नहीं प्राप्त होता । ममता और चपलता आदिक विकार हमको कोई नहीं होता और ऐसे हम कदाचित् जानते ही नहीं । देश, काल, वस्तु जगत् अवसान को प्राप्त हो भासते हैं और उनका विपर्यय होना भी भासता है पर वह अपने स्वभाव में स्थित है, क्योंकि यह दृश्य उनको अपने स्वरूप का आभास फुरता भासता है । जो कुछ दृश्य प्रपञ्च है वह सत्य चित्त संवित् की स्पन्द कला से फुरता है । और नाना प्रकार देश, काल क्रिया और द्रव्य होकर भासता है । उसको आत्मसत्ता किसी यत्न से नहीं रचती बल्कि स्वाभाविक ही फुरने से फुरते हैं । जैसे समुद्र तरंगों को किसी यत्न से नहीं उपजाता और लीन करता स्वाभाविक ही चमत्कार फुरता और लीन होता है, तैसे ही आत्मा में स्वाभाविक ही सृष्टि फुरती है और लय होती है । जैसे समुद्र और तरंग में कुछ भेद नहीं तैसे ही आत्मा और जगत् में कुछ भेद नहीं–वही रूप है । जैसे दूध घृतरूप है । घट पृथ्वीरुप है और रेशम तंतुरूप है तैसे ही जगत् आत्मरूप है जैसे वटधान्य वृक्षरुप हो भासता है और समुद्र तरंगरूप हो भासता है तैसे ही आत्मा जगत् रूप हो भासता है । हे रामजी! इन दृष्टान्तों का एक अंग लेना, कारण कार्य भाव न लेना क्योंकि आत्मा में न कोई कर्ता है न कोई भोक्ता है और न कोई विनाश होता है केवल आत्मतत्व, साक्षी, निरामय और अद्भुत अपने आप स्वभावसत्ता में स्थित है । यह जगत् आत्म का प्रकाश है जैसे दीपक और सूर्य का प्रकाश । जैसे पुष्प का स्वभाव सुगन्ध है तैसे ही आत्मा का स्वभाव जगत् है, किसी कारण कार्य से नहीं हुआ । जगत् आत्मा से कुछ भिन्न नहीं हुआ । जैसे पवन का स्वभाव स्पन्दरूप है और जब निःस्पन्द होता है तब नहीं भासता तैसे ही आत्मा में संवेदन फुरता है तब जगत् हो भासता है और जब लय होता है तब जगत् नहीं भासता ।जगत् कुछ नहीं है न सत् है और न असत् है । कहीं प्रकट भासता है और कहीं अप्रकट भासता है और नाना प्रकार का विचित्ररूप भासता है । जैसे वन में पुष्प का रस होता है पर उनके उपजने और नष्ट होने से न वन उपजता है और न नष्ट होता है तैसे ही आत्मसत्ता जगत् के उपजने और नष्ट होने से रहित है वास्तव में उपजा कुछ नहीं इससे आत्मा ही अपने आपमें स्थित है पर असम्यक्‌ज्ञान से जगत् भासता है और अनन्त शाखाओं से फैल रहा है, इसलिये इसको ज्ञानरूपी कुठार से काटो तब सुखी होगे । जगत्‌रूपी वृक्ष का असम्यक्‌ज्ञान बीज है, शुभ अशुभरूपी फूल है और आशा रूपी बेलि से बेष्टित है, दुःखरूपी उसकी शाखा है, भोग और जरारूपी फल हैं और तृष्णारूपी लता से घिरे हुए भासते हैं । ऐसे संसाररूपी वृक्ष को आत्मविवेकरूपी कुठार से यत्न करके काटकर मुक्त हो । जैसे गजपति अपने बल से बन्धन तोड़के सुखचित्त विचरता है तैसे ही तुम भी निर्बन्ध होकर विचरो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे सर्वैकताप्रतिपादनन्नाम एकोनचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥३९॥

अनुक्रम

ब्रह्मप्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन् ये जो जीव हैं वे ब्रह्म से कैसे उत्पन्न हुए और कितने हुए हैं, मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये? वसिष्ठजी बोले, हे महाबाहो! जैसी विचित्रता से ये उपजते, नाश होते, बढ़ते और स्थित होते हैं वह क्रम सुनो । हे निष्पाप राम! शुद्ध ब्रह्मत्व की वृत्ति जो चेतनशक्ति है सो निर्मल है, जब वह स्फुरणरूप होती है तब कलनारूप घनभाव को प्राप्त होती और संकल्परूप धारण करती है, और फिर तन्मय होकर मनरूप होती है । यह मन संकल्पमात्र से जगत् को रचता है और विस्तारभाव को प्राप्त करता है, जैसे गन्धर्व नगर विस्तार को, प्राप्त होता है तैसे ही मन से जगत् का विस्तार होता है । ब्रह्मदृष्टि को त्याग के जो जगत् रचता है सो सब आत्मसत्ता का चमत्कार है । हमको तो सब आकाशरूप भासता है पर दूरदर्शी को जगत् भासता है । जैसे चित्तसंवित् में संकल्प फुरता है तैसा ही रूप होता है । प्रथम ब्रह्मा का संकल्प फुरा है इसलिये उस चित्त संवित् ने आपको ब्रह्मारूप देखा और ब्रह्मारूप होकर जब जगत् को कल्पा तब प्रजापति होकर चतुर्दश प्रकार के भूतजात उत्पन्न किये, वास्तव में सब ज्ञप्तिरूप हैं । उसके फुरने से जो जगत् भासता है सो चित्तमात्र शून्य आकाशरूप है । वास्तव में शरीर कुछ नहीं संकल्पमात्र है स्वप्ननगर भ्रान्ति से भासते हैं । उस भ्रान्तिरूप जगत् में जो जीव हुए हैं और कोई मोह से संयुक्त है, कोई अज्ञानी है, कोई मध्यस्थित हैं और कोई ज्ञानी उपदेष्टा है, जो कुछ भूतजात हैं वे सब आधिव्याधि दुःख से दीन हुए हैं । उनमें कोई ज्ञानवान् सात्त्विकी हैं और कोई राजसी सात्विकी हैं । जो शान्तात्मा पुरुष हैं उनको संसार के दुःख कदाचित् स्पर्श नहीं करते वे सदा ब्रह्म में स्थित हैं । हे रामजी! यह जो मैंने तुमसे भूतजात कहे हैं सो ब्रह्म, शान्त, अमृतरूप, सर्व व्यापी निरामय, चैतन्यरूप, अनन्तात्मा रूप और आधिव्याधि दुःख से रहित निर्भ्रम है । जैसे अनन्त सोमजल के किसी स्थान में तरंग फुरते हैं तैसे ही परमब्रह्म सत्ता के किसी स्थान में जगत्प्रपञ्च फुरता है । फिर रामजी ने पूछा, हे भगवन्! ब्रह्मत्त्व तो अनन्त, निराकार, निरवयवक्रम है उसका एक अंश स्थान कैसे हुआ? निरवयव में अवयवक्रम कैसे होता है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उस करके उपजे हैं अथवा उससे उपजे हैं यह जो कारण और उपादान है वह भ्रान्तिमात्र है । यह शास्त्र रचना व्यवहार के निमित्त कही है परमार्थ में कुछ नहीं है अवयव से जो देशादिक कल्पना है वह क्रम से नहीं उपजी, उदय और अस्त पर्यन्त दृष्टिमात्र भी होती है पर कल्पनामात्र है । वह कल्पनामात्र है । वह कल्पना भी आत्मारूप है आत्मा से रहित कल्पना भी न कुछ वस्तु है न हुई है और न कुछ होगी । उसमें जो शब्द अर्थ आदिक युक्ति है वह व्यवहार के निमित्त है परमार्थ में कुछ नहीं । शब्द अर्थमात्र जगत्कलना उस करके उपजी है और उससे उपजी है यह द्वितीय कल्पना भी नहीं यह तो तन्मय शान्तरूप आत्मा ही है और कुछ नहीं । जैसे अग्नि से अग्नि की लपटें फुरती हैं सो अग्निरूप हैं और 'उससे उपजी' और 'उस करके उपजी' यह कल्पना अग्नि में कोई नहीं, अग्नि ही अग्नि है, तैसे ही जन और जनक अर्थात् कार्य और कारणभेद आत्मा में कोई नहीं । कोई कारणभाव कल्पनामात्र है, जहाँ अधिकता और न्यूनता होती है वहाँ कारण कार्यभाव होता है कि यह अधिक कारण है और वह कार्य है । भिन्न-भिन्न कारण कार्य भाव बनता भी है और जहाँ भेद होता है वहाँ भेद कल्पना भी हो पर एक अद्वैत में शब्द कैसे हो और शब्द का अर्थ कैसे हो? जैसे अग्नि और अग्नि की लपट में भेद नहीं होता तैसे ही कारण कार्यभाव आत्मा में कोई नहीं-शब्द अर्थ कल्पना मात्र है । जहाँ प्रतियोगी, व्यवच्छेद और संख्या भ्रम होता है वहाँ द्वैत और नाना त्व होता

है जैसे चेतन का प्रतियोगी जड़ और जड़ का प्रतियोगी चेतन है, व्यवहार अर्थात् परिच्छिन्न वह है जैसे घट में आकाश होता है और संख्या यह है कि जैसे जीव और ईश्वर। यह शब्द अर्थ द्वैतकल्पना में होते हैं और जहाँ एक अद्वैत आत्मा ही है वहाँ शब्द अर्थ कोई नहीं। जैसे समुद्र में तरंग बुद्बुदे सब ही जल हैं और जल से कुछ भिन्न नहीं, तैसे ही शब्द और अर्थकल्पना वास्तव से ब्रह्म है। जो बोधवान् पुरुष हैं उनको सब ब्रह्म ही भासता है, चित्त भी ब्रह्म है, मन भी ब्रह्म है और ज्ञान, शब्द, अर्थ ब्रह्म ही है, ब्रह्म से कुछ भिन्न नहीं और उससे जो भिन्न भासता है वह मिथ्याज्ञान है जैसे अग्नि और अग्नि की लपटों की कल्पना भ्रान्तिमात्र है तैसे ही आत्मा में जगत् की भिन्न कल्पना असत्‌रूप है। जो ज्ञान से रहित है उसको दृष्टिदोष से सत्य हो भासता है। इससे सर्व ब्रह्म है ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं। निश्चय करके परमार्थ ब्रह्म से सब ब्रह्म ही है। सिद्धान्तकाल में तुमको यही दृष्टि उपजेगी। यह जो सिद्धान्त पिञ्जर मैंने तुमसे कहा है उस पर उदाहरण कहूँगा कि यह क्रम अविद्या का कुछ भी नहीं, अज्ञान के नाश हुए अत्यन्त असत् जअनोगे। जैसे तम से रस्सी में सर्प भासता है और जब प्रकाश उदय होता है तब ज्यों का त्यों भासता है और सर्पभ्रम नष्ट हो जाता है, तैसे ही अज्ञान दृष्टि से जगत् भासता है। जब शुद्ध विचार से भ्रान्ति नष्ट होगी तब निर्मल प्रकाश सत्ता तुमको भासेगी इसमें संशय नहीं यह निश्चितार्थ है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे ब्रह्मप्रतिपादनन्नाम चत्वारिंशतमस्सर्गः ॥४०॥

अनुक्रम

अविद्याकथन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपके ये वचन क्षीरसमुद्र के तरंगवत् उज्ज्वल, तीनों तापों के नाश कर्त्ता, हृदय के मल के दूर करने को निर्मलरूप और अज्ञानरूपी तम के ना शकर्त्ता प्रकाशरूप हैं और गम्भीर हैं, मैं उनकी तोल नहीं पा सकता एक क्षण में मैं संशय से अन्धकार को प्राप्त होता हूँ और एक क्षण में निःसंशयरूप प्रकाश को प्राप्त होता हूँ जैसे चपलरूप मेघ से सूर्य का प्रकाश कभी भासता और कभी घिर जाता है । इससे मेरा संशय दूर करो कि अप्रमेयरूप आत्मानन्द सत्ता प्रकाशरूप और असत्यभाव से रहित साररूप है तो उस अद्वैततत्त्व में कल्पना कहाँ से आई? वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह यथार्थ है और जैसे कहा है तैसे ही है । यह वचन असमर्थ भी नहीं क्योंकि जिसके हृदय में ठहरें उसको आत्मपद में प्राप्त करें, विरूप भी नहीं है, क्योंकि इनका रूपफल प्रकट है जिसके धारण से संसार के सब दुःख मिट जाते हैं और पूर्वापर विरोध भी नहीं है कि प्रथम कुछ और कहा । जो कुछ मैंने कहा है सो यथार्थ कहा है परन्तु ज्ञानदृष्टि से जब तुम्हारा हृदय निर्मल होगा और विस्तृत बोधसत्ता हृदय में प्रकाशेगी तब तुम मेरे वचनों के तात्पर्य को हृदय में ठीक जानोगे तुमको जो मैं उपदेश करता हूँ सो वाच्य वाचक शास्त्र के सम्बन्ध जताने के निमित्त करता हूँ । जब इन युक्त वचनों से तुम जानोगे तब तुम्हें अद्वैतसत्ता निर्मल भासेगी और जो कुछ वाच्य–वाचक शब्द अर्थ रचना है उसको त्याग करोगे । ज्ञानवान् को सदा परमार्थ अद्वैत सत्ता भासती है आत्मा में इच्छादिक कल्पना कुछ नहीं, निर्दुख निर्द्वन्द्व है और जगत्रूप होकर स्थित हुआ है । इस प्रकार मैं तुमको विचित्र युक्ति से कहूँगा जब तक सिद्धान्त उपदेश की आवश्यकता है तब तक आत्मसत्ता नहीं प्रकाशती जब आत्मबोध होगा तब आप ही जानोगे । अज्ञानरूपी तम वाक्विस्तार बिना शान्त नहीं होता । इस कारण मैं तुमको अनेक युक्तियों से कहूँगा । जब तक सिद्धान्त उपदेश का अवकाश है । हे रामजी! शुद्ध आत्मसत्ता के आश्रय जो संवेदना भास फुरता है उसी का नाम अविद्या है । वह दो रूप रखती है–एक उत्तम और दूसरा मलिन । जो स्पन्दकला अविद्या के नाश निमित्त प्रवर्तती है वह उत्तम है और विद्या भी उसी का नाम है और सब दुःख नाश करती है और जो संसार की ओर फुरती है वह अविद्या है अर्थात् आत्मा की ओर फुरती है सो विद्या है और दृश्य की ओर जो फुरती है वह अविद्या है पर दोनों स्पन्दरूप हैं इससे विद्या से अविद्या का नाश करो । जैसे ब्रह्मअस्त्र से ब्रह्मअस्त्र शान्त होता है, विष को विष नाश करता है और शत्रु को शत्रु मारता है, तैसे ही विद्या से अविद्या नाश होती है । इसी प्रकार तुम भी इसको नाश करो तब सुखी होगे । विचार से जब इसका नाश होता है तब जानी नहीं जाती कि कहाँ गई, जैसे दीपक से अन्धकार देखिये तो नहीं दीखता कि कहाँ गया । बड़ा आश्चर्य है कि जीव का ज्ञान इसने ढाँप लिया है आत्मसत्ता सदा अनुभव और उदयरूप है, पर अज्ञानी जीव को नहीं भासती । जब तक अविद्या नहीं जानी तब तक फुरती है और जब जानी तब नहीं जानता कि कहाँ गई इससे भ्रममात्र सिद्ध है । बड़ा आश्चर्य है कि माया ने संसार चक्र बाँध रक्खा है और सत्य की नाईं है पर असत्य है । बुद्धिमानों को भी यह नाशकर छोड़ती है तो जीवों का क्या कहना है । निरन्तर अभेदरूप आत्मा में अविद्या भेद कल्पना कोई नहीं, जिस पुरुष ने संसार माया को ज्यों का त्यों जाना है वही पुरुषोत्तम है । जिसको यह भावना हुई है कि अविद्या परमार्थ से कुछ नहीं, असत्यरूप है सो ज्ञानवान् है । जो कुछ जानने योग्य है वह उसने जाना है– इसमें संशय नहीं जब तक स्वरूप में न जागो तब तक मेरे वचन में आसक्त बुद्धि करो और निश्चय धारो कि अविद्या नाशरूप है और है नहीं । जो कुछ जगत्दृश्य भासता है वह मन का मनन असत् रूप है जिसको यह निश्चय हुआ है वही पुरुष मोक्षभागी है । यह जो मन का

फुरनारूप जगत् दृश्यभाव को प्राप्त हुआ है वह सब ब्रह्मरुप है जिसके हृदय में यह निश्चय स्थित है वही पुरुष मोक्षभागी है और जिसको चराचर जगत् में दृढ़ भावना है वह बन्ध है जैसे पक्षी जाल में बन्धायमान होता है । हे रामजी! संपूर्ण जीव इस संसार की सत्य दृष्टि से बाँधे हुए हैं । सब जगत् स्वप्न भ्रान्तिरूप है पर उसमें जिसको असत् बुद्धि है अथवा सत् ब्रह्मबुद्धि है वह आसक्त होकर संसारदुःख में नहीं डूबता और जिस को अनात्मधर्म देहादिक में भावना है और स्वरूप का बोध नहीं वह हर्ष–शोक आपदा को प्राप्त होता हे जिसको स्वरूप का बोध है और अनात्मधर्म का त्याग है उसको संसाररूपी अविद्या नहीं रहती और दुःख विकार स्पर्श नहीं करता । जैसे जल में धूल नहीं उड़ती तैसे ही उस महात्मा पुरुष के चित्त में दुख उदय नहीं होते । ज्ञानवान् पुरुष के हृदय में जगत् के शब्द अर्थ का रंग नहीं चढ़ता । जैसे सूत बिना वस्त्र नहीं होता– तन्तु ही पटरूप है तैसे ही आत्मा बिना जगत् नहीं होता–जगत् आत्मारूप है । ऐसे जानके जो व्यवहार में वर्तता है वह पुरुष मानसी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो अविद्या से संसार में भटकता है वह आत्मतत्त्व को नहीं पा सकता और विद्यमान आत्मा उसको नहीं भासता । केवल आत्मज्ञान से अविद्या का नाश होता है, जिसको आत्मज्ञान हुआ है वह अविद्यारूपी नदी को तर जाता है । आत्मसत्ता में प्राप्त हुए अविद्या क्षीण हो जाती है, जिनको अविद्यारूपी संसार के पदार्थ की इच्छा उदय होती है वे अविद्यारूपी नदी में बह जाते हैं । हे रामजी! यह अविद्या बड़े मोह और भ्रम को दिखाती है । जब यह दृढ़ हो कर स्थित होती है तब तत्पद को घेर लेती है, इससे तुम यह न विचारो कि अविद्या कहाँ से उपजी है और कौन इसका कारण है यही विचारो कि यह नष्ट कैसे होती है । इसके क्षय का उद्यम करो, जब यह नष्ट होगी तब इसकी उत्पत्ति भी जान लोगे कि इस प्रकार उपजी है और यह इसका स्वरूप है यह कारण है और यह कार्य है । हे रामजी! अविद्या वास्तव में कुछ है नहीं, अविचारसिद्ध है और विचारदृष्टि से नष्ट हो जाती है तब जानी नहीं जाती कि कहाँ गई, पर जब स्वरूप विस्मरण होता है तब उपजकर दृढ़ होती है और फिर दुःख देती है । इससे बल करके इसका नाश करो । बड़े बड़े शूरमा हुए हैं पर उनको भी अविद्या ने व्याकुल किया है, ऐसा बुद्धिमान कोई नहीं जिसको अविद्या ने व्याकुल नहीं किया । अविद्या सर्वरोगों का मूल है, यत्न करके इसकी औषध करो कि जिससे जन्म–दुःख कुहिरा न प्राप्त हो । जो कुछ आपदा है उसकी यह अधिष्ठाता सखी है, अज्ञान रूपी वृक्ष की बेलि है और अनर्थरूपी अर्थ की जननी है । ऐसी अविद्यारूपी मलीनता को दूर करो जो मोह, भय, आपदा और दुःख की देनेवाली है और हृदय में मोह उपजाकर जीवों को व्याकुल करती है । अज्ञान चेष्टा से इसकी वृद्धि होती है जब अविद्यारूपी संसार समुद्र से पार होगे तब शान्ति होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे अविद्याकथनन्नाम एकचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४१॥

अनुक्रम

जीवतत्त्व वर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अविद्यारूपी रोग को काटकर जब शान्तरूप स्थित होते हैं और विचाररूपी नेत्र से देखते हैं तब यह नष्ट हो जाती है । इस विस्तृत व्याधि की औषध सुनो, जीव जगत् का विस्तार मैं तुमसे कहता हूँ! सात्विक, राजस आदिक मन की वृत्ति विचारने के लिये मैं प्रवृत्त हुआ था । जो तत्त्व अमृत और ब्रह्मस्वरूप है वह सर्व व्यापी निरामय, चैतन्यप्रकाश, अनन्त और आदि अन्त से रहित निर्भ्रम है । जब वह चैतन्यप्रकाश स्पन्दरूप हो फुरता है तब दीपकवत् तेज प्रकाश चेतनरूप चित्तकला जगत् को चेतने लगता है– तब जगत् फुरता है । जैसे सोमजल समुद्र में द्रवता से तरंग होता है सो जल से भिन्न नहीं है तैसे ही सर्वात्मा से भिन्न किसी कला का रूप नहीं–यह स्पन्द रूप भी अभेद है । जैसे आकाश में आकाश स्थित है तैसे ही आत्मा में चित्त शक्ति है, जैसे नदी में वायु के संयोग से तरंग उठते हैं तैसे ही आत्मा में चित्तकला दृश्य जगत् होता है, बल्कि ऐसे भी नहीं, आत्मा अद्वैत है स्वतः उसमें चित्तकला हो आती है । जैसे वायु में स्वाभाविक स्पन्द होता है । स्पन्द और निःस्पन्द दोनों वायु के रूप हैं पर जब स्पन्द होता है तब भासता है और निःस्पन्द होता है तब अलक्ष्य हो जाता है तैसे ही चित्त–कला फुरती है तब लक्ष्य में आती है और निःस्पन्द हुई अलक्ष्य होती है तब शब्द की गम नहीं होती । स्पन्द से जगत्भाव को प्राप्त होती है । जैसे समुद्र में तरंग और चक्र फुरते हैं तैसे ही चेतन में चित्तकला फुरती है जैसे आकाश मैं मुक्तमाल भासता है सो है नहीं तैसे ही आत्मा में वास्तव कुछ नहीं पर स्पन्दभाव से कुछ भूषित दूषित हो भासती है । आत्मा से भिन्न कुछ नहीं परन्तु भिन्न की नाईं भासती है ।जैसे प्रकाश की लक्ष्मी कोट रविसम स्थित होती है तैसे ही आत्मा में चित्त शक्ति है और देश,काल, क्रिया और द्रव्य को जैसे जैसे चेतती है तैसे ही तैसे हो भासती है । फिर नाम संज्ञा होती है और अपने स्वरूप को विस्मरण करके दृश्य से तन्मय होती है तो भी स्वरूप से व्यतिरेक नहीं होती परन्तु व्यतिरेक की नाईं भावना होती है जैसे समुद्र से तरंग और सुवर्ण से भूषण भिन्न नहीं तैसे ही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं, तैसे ही आत्मा से चित्तशक्ति भिन्न नहीं, परन्तु अपने अनन्त स्वभाव को विस्मरण करके देश, काल, क्रिया द्रव्य को मानती है संकल्प के धारने से कल्पना भाव को प्राप्त होती है और विकल्प कल्पना से क्षेत्रज्ञ रूप होती है शरीर का नाम क्षेत्र है । और शरीर को भीतर बाहर जानने से क्षेत्रज्ञ नाम होता है । वह क्षेत्रज्ञ चित्रकला अहंभाव की वासना करती है और उस अहंकार से आत्मा से भिन्नरूप धारती है फिर अहंकार में निश्चय कलना होती है उसका नाम बुद्धि होता है । अहंभाव से जब निश्चय संकल्प कलना होती है उसका नाम मन होता है, वही चित्तकला मनभाव को प्राप्त होती है । जब मन में घन विकल्प उठते हैं तब शब्द, स्पर्श रूप, रस, गन्ध की भावना से इन्द्रियाँ फुर आती हैं और फिर हाथ पाँव प्राण संयुक्त देह भासि आती है । इस प्रकार जगत् से देह को पाकर जीव जन्म मृत्यु को प्राप्त होता है, वासना में बँधा हुआ दुःख के समूह को पाता है, कर्म से चिन्ता में दीन रहता है और जैसे कर्म करता है तैसे ही आकार धारता है । जैसे समय पाके फल परिपक्वता को प्राप्त होता है तैसे ही स्वरूप के प्रमाद से जीव दृश्यभाव को प्राप्त होता है, आपको कारण, कार्य मानके, अहंभाव को प्राप्त होता है, निश्चय वृत्ति से बुद्धिभाव को प्राप्त होता है और संकल्प संयुक्त मन–भाव को प्राप्त होता है । वही मन तब देह और इन्द्रियाँ रूप होकर स्थित होता है और अपना अनन्त रूप भूल जाता है और परिच्छिन्न भाव को ग्रहण करके प्रतियोग और व्यवच्छेदभाव भासता है और तभी इच्छा, मोहादिक शक्ति को प्राप्त होता है । जैसे समुद्र में नदियाँ प्रवेश करती है तैसे ही सब आपदा और दुःख आय प्राप्त होते हैं । इस प्रकार अहंकार अपनी रचना से आप ही बन्धवान होता है जैसे कुसवारी अपने स्थान को रचकर आप ही बन्धवान्

होती है । बड़ा खेद है कि मन आप ही संकल्प से हृदय को रचता है और फिर उसी देह में आस्था करता है, जिससे आप ही दुःखी होता है, भीतर से तपता रहता है और आपको बन्धायमान कर संसार जंगल में अविद्यारूप आशा को लेके फिरता है । अपने संकल्पकलना से तन्मात्रा और देह हुई है और उसमें अहं प्रतीति होती है । जैसे जल में तरंग होते हैं तैसे ही देहादिक उदय हुए है और उससे बँधा हुआ जीव दुःखित होता है, जैसे सिंह जञ्जीर से बाँधा जावे । एकस्वरूप है वही फुरने के वश से नाना भाव को प्राप्त हुआ है, कहीं मन, कहीं अहंकार, कहीं ज्ञान, कहीं क्रिया, कहीं पुर्यष्टक, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं कर्म, कहीं विद्या, कहीं अविद्या और कहीं इच्छा कहाता है । हे रामजी! इसी प्रकार जीव अपने चित्त से भ्रम में प्राप्त हुआ है और तृष्णारूपी शोकरोग से दुःख पाता है, तुम यत्न करके इससे तरो । जरा–मरण आदिक विचार और संसार की भावना ही जीव को नष्ट करती है । यह भला है, ग्रहण कीजिए, यह बुरा है, त्याग करने योग्य है, संकल्प–विकल्प में ग्रसा अविद्या के रंग से रञ्चित हुआ है, इच्छा करने से इसका रूप सकुच गया है और कर्मरूपी अंकुर से संसाररूपी वृक्ष बढ़ गया है जिससे अपना वास्तव–स्वरूप विस्मरण हुआ है और कलना से आपको मलीन जानकर अविद्या के संयोग से नरक भोगता है और संसारभावनारूपी पर्वत के नीचे दबकर आत्मपद की ओर नहीं उठ सकता । संसाररूपी विष का वृक्ष जरामरणरूपी शाखा से बढ़ गया है और आशारूपी फाँस से बाँधे हुए जीव भटककर चिन्तारूपी अग्नि में जलते हैं और क्रोधरूपी सर्प ने जीवों को चर्बण किया है जिससे अपनी वास्तविकता विस्मरण हो गई है । जैसे अपने यूथसमूह से भूला हरि शोक से दुःखी होता है, पतंग दीपक की शिखा में जल मरता है और मूल से काटा कमल विरूप होता है तैसे ही आशा से क्षुद्र हुआ मूर्ख बड़ा दुःख पाता है । जैसे कोई मूढ़ विष को सुखरूप जानके भक्षण करे तो दुःख पाता है तैसे ही इसको भोग में मित्र बुद्धि हुई है परन्तु वह इसका परम शत्रु है, इसको उन्मत्त करके मूर्च्छा करता और बड़ा दुःख देता है । जैसे बाँधा हुआ पक्षी पिंजरे में दुःख पाता है तैसे ही यह दुःख पाता है । इससे इसको काटो । यह जगत्जाल असत् और गन्धर्वनगरवत् शून्य है और इसकी इच्छा अनर्थ का कारण है, तुम इस संसारसमुद्र में मत डूबो । जैसे हाथी कीचड़ से अपने बल से निकलता है तैसे ही अपना उद्धार करो । संसाररूपी गढ़े में मनरूपी बैल गिरा है जिससे अंग जीर्ण हो गये हैं । अभ्यास और वैराग्य के बल से इसको निकाल के अपना उद्धार करो । जिस पुरुष को अपने मन पर भी दया नहीं उपजती कि संसार दुःख से निकले वह मनुष्य का आकार है परन्तु राक्षस है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवतत्त्व वर्णनन्नाम द्वीचत्वारिंशत्तमस्सर्ग ॥४२॥

अनुक्रम

जीवबीजसंस्थावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो जीव परमात्ता से फुरकर संसारभावना करते हैं उनकी संख्या कुछ नहीं कही जाती, कोई पूर्व उपजे हैं, और कोई अब तक उपजते हैं । जैसे फुरने से जल के कणके प्रकट होते हैं तैसे ही ब्रह्मसत्ता से जीव फुरते हैं पर अपनी वासना से बाँधे हुए भटकते हैं और विवश होकर नाना प्रकार की दशा को प्राप्त होते हैं , चिन्ता से दीन हो जाते हैं और दशों दिशा जल थल में भ्रमते हैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और नष्ट होते हैं तैसे ही जीव जन्म और मरण पाते हैं । किसी का प्रथम जन्म हुआ है, किसी के सौ जन्म हो चुके हैं, कोई असंख्य जन्म पा चुके हैं, कोई आगे होंगे, कोई होकर मिट गये हैं और कोई अनेक कल्पपर्यन्त अज्ञान से भटकेंगे । कोई अब जरा में स्थित हैं, कोई यौवन में स्थित हैं कोई मोह से नष्ट हुए हैं, कोई अल्पवय हो कर स्थित हैं, कोई अनन्त आनन्दी हुए हैं, कोई सूर्यवत् उदितरूप हैं, कोई किन्नर हैं कोई विद्याधर हैं, और कोई सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा, विष्णु, यक्ष, वैताल और सर्प हैं । कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहाते हैं और कोई क्रान्त, चाण्डाल आदिक हैं । कोई तृण, औषध, पत्र, फूल, मूल को प्राप्त हुए हैं और कोई लता, गुच्छे, पाषाण, शिखर हुए हैं । कोई कदम्बवृक्ष, ताल और तमाल है और कोई मण्डलेश्वर चक्रवर्ती हुए भ्रमते हैं । कोई मुनीश्वर मौनपद में स्थित हैं, कोई कृमि, कीट, पिपीलिका आदिक रुप हैं । कोई सिंह, मृग, घोड़े, खच्चर, गर्दभ बैल आदिक पशुयोनि में हैं और कोई सारस, चक्रवाक, कोकिला, बगुलादिक पक्षी है । कोई कमल कली, कुमुद, सुगन्धादिक हैं और कोई आपदा से दुःखी हैं । कोई सम्पदावान् हैं, कोई स्वर्ग और कोई नरक में स्थित हैं । कोई नक्षत्रचक्र हैं, कोई आकाश में वायु हैं कोई सूर्य की किरणों में और कोई चन्द्रमा की किरणों में रस लेते हैं,कोई जीवन्मुक्त हैं, कोई अज्ञान से भ्रमते हैं, कोई कल्याणभागी चिरपर्यन्त भोग को भोगते हैं, कोई परमात्मा में मिल गये हैं । कोई अल्पकाल और कोई शीघ्र ही आत्मतत्त्व में लय हुए हैं कोई चिरकाल में जीवन्मुक्त होवेंगे, कोई मूढ़ दुर्भावना करते अनात्मा में भ्रमते हैं, कोई मृतक होकर इस जगत् में जन्मते हैं, कोई और जगत् में जा स्थित होते हैं और कोई न यहाँ और न वहाँ उपजते हैं केवल आत्मतत्त्व में लय होते हैं । कोई मन्दराचल, सुमेरु आदि पर्वत होकर स्थित होते हैं, कोई क्षीरसमुद्र, इक्षु रस, जल आदिक समुद्र हुए हैं । कोई नदियाँ, तड़ाग, वापिकादि भये हैं, कोई स्त्रियाँ, कोई पुरुष और कोई नपुन्सकरूप हुए हैं । कोई मूढ़, कोई प्रबुध, कोई अत्यन्त मूढ़ हुए हैं, कोई ज्ञानी, कोई अज्ञानी, कोई विषयतप्त और कोई समाधि में स्थित हैं । इसी प्रकार जीव अपनी वासना से बाँधे हुए भ्रमते हैं और संसार–भावना से जगत् में कभी अधः और कभी ऊर्ध्व को जाकर काम, क्रोधादिक दुःख की पीड़ा पाते हैं । वे कर्म और आशारूपी फाँसी से बाँधे हुए हैं और अनेक देह को उठाये फिरते हैं । जैसे भारवाही भार को उठाते हैं तैसे ही कोई मनुष्य शरीर से फिर मनुष्य शरीर को धारते हैं, कोई वृक्ष से वृक्ष होते हैं और कोई और से और शरीर धारते हैं । इसी प्रकार आत्मरूप को भुलाकर जो देह से मिले हुए वासना रूप कर्म करते हैं वे उनके अनुसार अधः ऊर्ध्वभ्रमते हैं । जिनको आत्मबोध हुआ है वे पुरुष कल्याणरूप हैं और सब दुःखी मायारूप संसार में मोहित हुए है । यह संसाररचना इन्द्रजाल की नाईं है, जब तक जीव अपने आनन्दस्वरूप को नहीं पाता और साक्षात्कार नहीं होता तब तक संसारभ्रम में भ्रमता है और जिस पुरुष ने अपने स्वरूप को जाना है और जीवों की नाईं त्याग नहीं किया और बारम्बार संसार के पदार्थों से रहित आत्मा की ओर धावता है वह समय पाकर आत्मपद को प्राप्त होगा और फिर जन्म न पावेगा । कोई जीव अनेक जन्म भोगके ज्ञान से अथवा तपसे ब्रह्मा के लोक को प्राप्त होते हैं तब परम पद पाते हैं, कोई सहस्त्र जन्म

भोगकर फिर संसार में प्राप्त होते हैं, कोई बुद्धिमान विवेक को भी प्राप्त होते हैं और फिर संसार में गिरते हैं अर्थात् मोक्षज्ञान को पाके फिर संसारी होते हैं, कोई इन्द्रपद पाकर तुच्छ बुद्धि से फिर तिर्यक् पशुयोनि पाते हैं और फिर मनुष्याकार धारते हैं, कोई महाबुद्धिमान् ब्रह्मपद से उपजकर उसी जन्म में ब्रह्मपद को प्राप्त होते हैं, कोई अनेक जन्म में और कोई थोड़े जन्म में प्राप्त होते हैं । कितने एक जन्म से और ब्रह्माण्डको प्राप्त होते हैं, कोई इसी में देवता से पशु जन्म पाते हैं, कोई पशु से देवता हो जाते हैं और कोई नाग हो जाते हैं । निदान जैसी–तैसी वासना होती है तैसा ही रूप हो जाता है । जैसे यह जगत् विस्ताररूप है तैसे ही अनेक जगत् हैं, कोई समानरूप है, कोई विलक्षण आकार है, कोई हुए हैं, कोई होवेंगे, विचित्ररूप सृष्टि उपजती है और मिटती है और कोई गन्धर्व भाव, कोई यक्ष, देवता आदिक भाव को प्राप्त हुए हैं । जैसे जीव इस जगत् में व्यवहार करते हैं तैसे ही और जगतों में भी व्यवहार करते हैं पर आकार विलक्षण हैं और अपने स्वभाव के वश हुए जन्म–मरण पाते हैं । जैसे समुद्र से तरंग उपजते हैं और मिट जाते हैं तैसे ही सृष्टि की प्रवृत्ति, उत्पत्ति और लय होती है । जब संवित्स्पन्द होते हैं तब उपजते हैं और जब निःस्पन्द होते हैं तब लय होते हैं । जैसे दीपक का प्रकाश लय होता है, सूर्य से किरणें निकलती हैं तप्त लोहे और अग्नि से चिनगारी निकलती हैं, काल में ऋतु निकलती हैं, पुष्प से सुगन्ध प्रकट होती है और समुद्र से तरंग उपजते और फिर लय होते हैं तैसे ही आत्मसत्ता से जीव उपजते हैं और लय होते हैं । जितने जीव हैं वे सब समय पाके अपने पद में लय होंगे और स्वरूप में इनका उपजना, स्थित, बन्धन, नष्ट होना मिथ्या है । त्रिलोकीरूप महामाया के मोह से उपजते हैं और समुद्र के तरंग की नाईं नाश होते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे जीवबीजसंस्थावर्णनन्नाम त्रिचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४३॥

अनुक्रम

संसारप्रतिपादन

रामजी ने पूछा, हे भगवन्! जीव इस क्रम से आत्मस्वरूप में स्थित है फिर अस्थि, माँस से पूर्ण देहपिंजर इसको कैसे प्राप्त हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मैंने प्रथम तुमको अनेक प्रकार से कहा है पर तुम अब तक जाग्रत नहीं हुए। पूर्वापर के विचार करने वाली तुम्हारी बुद्धि कहाँ गई? जो कुछ शरीरादिक स्थावर–जंगम जगत् दृष्टि आता है वह सब आभासमात्र है और स्वप्न् की नाईं उठा है पर दीर्घ स्वप्न है और मिथ्या भ्रम से भासता है। जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भ्रममात्र है और भ्रमने से पर्वत भासते हैं, तैसे ही जगत् अज्ञान से भासता है। जिन पुरुषों की अज्ञाननिद्रा नष्ट हुई है और निश्चय से संसार की वासनायें गल गईं हैं वे प्रबुद्धचित्त हैं। संसार को वे स्वप्नरूपदेखते हैं और स्वरूपभाव से कुछ नहीं देखते अपने ही स्वभाव में संसार कल्पित है। अज्ञानी जीव संसार को मोक्ष से प्रथम सर्वदा सत्रूप देखते हैं और उनकी संसार भावना असत् नहीं होती। वे जगत् आकार सर्वदा अपने भीतर कल्पते हैं और जीव के अनेक आकार चपलरूप क्षण भंगुर होते हैं। जैसे जल में तरंग चञ्चलरूप होते हैं और बीज में अंकुर रहता है उसी के भीतर पत्र, फूल होते हैं। तैसे ही कल्पनारूपी देह मन के फुरने में रहती है! हे रामजी! देह न हो परन्तु जहाँ मन फुरता है वहाँ ही देह रच लेता है। जैसे स्वप्न में और मनोराज में देह रच लेता है तैसे ही यह देह और जगत् भी भ्रम से रचा हुआ है। जैसे चक्र पर चढ़ाया मृत्तिका का पिण्ड घटरूप हो जाता है जैसे ही मन के फुरने से देह बनता है। यह देह मन के फुरने में स्थित है और जो कुछ जगत् भासता है वह सब संकल्पमात्र है। जैसे मृगतृष्णा का जल असत्रूप होता है तैसे ही यह जगत् असत्य है जैसे बालक को अपनी परछाहीं में वैताल भासता है तैसे ही जीव को अपने फुरने से देहादिक भासते हैं। हे रामजी! सृष्टि के आदि में जो शरीर उत्पन्न हुए हैं वे आभास मात्र संकल्प से उपजे हैं। प्रथम ब्रह्मा पद्म में स्थित हुए और उन्होंने संकल्प के क्रम से संकल्पपुरकी नाईं विस्तार किया सो सब मायामात्र है। माया की घनता से यह जगत् भासता है–स्वरूप में कुछ नहीं। रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आदि जीव जो मनरूप फुरने को पाकर ब्रह्मपद को प्राप्त हुआ वह ब्रह्मा कैसे हुआ है और कैसे स्थित है वह मुझसे क्रम से कहिये? वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहु ,रामजी! प्रथम जिस प्रकार ब्रह्मा ने शरीर को पाकर ग्रहण किया है उसको सुनकर स्थिति भी जानोगे। देश काल आदिक के परिच्छेद से रहित आत्मतत्त्व अपने आपमें स्थित है। वह अपनी लीलाशक्ति से देश, काल, क्रिया को कल्पता है और उसी से जीव के इतने नाम हुए हैं। वासना से तद्रूप हुई चपलरूप मन हुआ और वह दृश्य कलना के सम्मुख हुई। प्रथम उसी चित्तकला ने मानसी शक्ति होकर आकाश की भावना की, और स्वच्छ बीजरूप जो शब्द है उसके सम्मुख हुई। जैसे नूतन बालक प्रकट होता है तैसे ही आकाश पोलरूप फुर आया। फिर स्पर्श बीज के सम्मुख हुई तब पवन फुर आया। जब शब्द, स्पर्श, आकाश और पवन का संघर्षण हुआ तब मन तन्मय होने से अग्नि उपजा और बड़ा प्रकाश हुआ। फिर रस तन्मात्रा की भावना की, तब शीतल भावना से जल फुर आया जैसे अति उष्णता से स्वेद निकल आता है। फिर गन्ध तन्मात्रा की भावना की उससे घ्राण इन्द्रिय निकली, स्थूल की भावना से जल चक्र पृथ्वी होकर स्थित हुआ और आकाश में बड़ा प्रकाश हुआ। अहंकार की कला से युक्त और बुद्धिरूपी बीज से समुच्चयरूप हुए और अष्टम जीवसत्ता हुई। इन अष्ट का नाम पुर्यष्टक हुआ और वही देहरूप कमल का भँवरा हुआ। आत्मसत्ता में तीव्र भावना करके उस चित्सत्ता ने बड़ा स्थूल वपु देखा। जैसे बीज से वृक्ष फूल होने से रस प्रणमता है तैसे ही निर्मल आकाश में वृत्तिस्पन्द, अस्पन्दरूप हुई। जैसे भूषण बनाने के निमित्त साँचे में सुवर्ण आदिक धातु डालते हैं तो वह भूषणरूप हो जाती है तैसे

ही ब्रह्मा ने अपनी चैतन्य संवेदन मनरूपी संवित् में तीव्र भावना की उससे स्थूलता को प्राप्त हुए । स्वतः यह दृश्य का रूप फुरना क्रम से हुआ कि उर्ध्व शीश है, अधः पाद है, चारों दिशा हाथ हैं और मध्य में उदय धर्म है । जैसे नूतन बालक प्रकट होता है और महा उज्ज्वल प्रकाशज्वाला की लपटों के समान अंग होते हैं तैसे ही ब्रह्मा का शरीर उत्पन्न हुआ । इस प्रकार वासनारूप कल्पित मन से शरीर उत्पन्न कर लिया है । आदि ब्रह्मा का प्रकाश ही शरीर हुआ है जो सदा ज्ञानरूप, सम्पूर्ण ऐश्वर्य, शक्ति, तेज और उदारता से सम्पन्न स्थित है । इस प्रकार ब्रह्माजी सब जीवों का अधिपति द्रव स्वर्णवत् कान्ति परम आकाश से उपजकर आकाररूप स्थित हुआ और अपनी लीला के निमित्त अपने निवास का गृह रचा । हे रामजी! कभी ब्रह्माजी परम आकाश में रहते हैं, कभी कल्पान्तर महाभास्कर अग्नि में रहते हैं और कभी विष्णुजी के नाभि कमल में रहते हैं इसी भाँति अनेक प्रकार के आसन रचकर कभी कहीं कभी कहीं स्थित होते हैं और लीला करते हैं । जब परम तत्त्व से प्रथम वह इस प्रकार फुरते हैं तब अपने साथ शरीर देखते हैं, जैसे बालक निद्रा से जागकर अपने साथ शरीर देखता है–जिसमें बाण के प्रवाह सदृश प्राण अपान जाते आते हैं–तब पञ्चतत्त्व जो द्रव्य हैं उनको रचते हैं । इस शरीर में बत्तीस दाँत, तीन थम्भ, तीन देवता अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव,नवद्वार दो जंघास्थल दो पाँव, दो भुजा, बीस अँगुली, बीस नख एक मुख और दो नेत्र हैं । कभी अपनी इच्छा से और अनेक भुजा और अनेक नेत्र कर लेता है और माँस की कहगिल है । ऐसा शरीर चित्तरूपी पक्षी का घर है, कामदेव भोगने का स्थान है, वासनारूपी पिशाचिनी का गृह है, जीवरूपी सिंह की कन्दरा है और अभिमानरूपी हस्ती का वन है । इस प्रकार ब्रह्माजी ने शरीर को देखा और बड़े उत्तम कान्तिमान् शरीर को देखकर ब्रह्माजी जो त्रिकालदर्शी हैं चिन्तवन करने लगे कि इसके आदि क्या हुआ है और अब हमें क्या करना हैं, तो उन्होंने क्या देखा कि जो आगे भूत का सर्ग वेदसंयुक्त व्यतीत हुआ है ऐसे अनेक सर्ग हुए हैं उनके सब धर्म स्मरण करके देखा और वाङ्मय भगवती और वेद का स्मरण किया और सर्वसृष्टि के धर्म, गुण, विकार, उत्पत्ति, स्थित, बढ़ना परिणाम, क्षीण और नाश को स्मृतिशक्ति से देखाजेसे योगेश्वर अपना और अन्यों का अनुभव करता है और चित्तशक्ति में स्थित होकर स्मृति–शक्ति से देख लेता है तैसे ही ब्रह्माजी ने दिव्य नेत्रों से अनुभव किया । फिर इच्छा हुई कि विचित्ररूप प्रजा को उत्पन्न करूँ । ऐसे विचारकर प्रजा को उत्पन्न किया और जैसे गन्धर्वनगर तत्काल हो जाता है तैसे ही सृष्टि हो गई । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उनके साधन रचे और फिर उनमें विधि निषेध रचे कि यह कर्तव्य है, यह अकर्तव्य है , उनके अनुसार फल की रचना की और शुभ अशुभ विचित्रता रची । हे रामजी! इस प्रकार से सृष्टि हुई और फुरने की दृढ़ता से ही स्थित है । उसमें तीन काल, क्रिया, द्रव्य, कर्म, धर्म रचे हैं । जैसे नीति रची है तैसे ही स्थित है । जैसे वसन्त ऋतु में पुष्प उत्पन्न होते हैं तैसे ही ब्रह्मा के मन ने सृष्टि रची है ।यह विचित्ररूप रचना का विलास चित्ररूप ब्रह्मा के चित्त में कल्पित है, काल से उत्पन्न हुई है और काल ही से स्थित है । स्वरूप में न कुछ उपजा है और न कुछ नष्ट होता है जैसे स्वप्नसृष्टि होती है तैसे ही यह संसार रचना है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारप्रतिपादनन्नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४४॥

अनुक्रम

यथार्थोपदेशयोग

वसिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार जो उपजा है वह कुछ नहीं उपजा और न स्थिति है–शून्य आकाशरूप है और मन के फुरने से सृष्टि भासती है । बड़े देश, काल, क्रिया संयुक्त जो ब्रह्माण्ड

दृष्टि आता है उसने परमार्थ में कुछ भी स्थान नहीं रोका, स्वप्नपुरवत् संकल्पमात्र है और आधार बिना चित्र है । जैसे मूर्ति का चित्र आधार बिना मिथ्या होता है तैसे ही यह जगत् बड़ा भासता है पर मिथ्या है, असत्य तमरूप है और आकाश में चित्त की नाईं है । जैसे स्वप्न में भासरूप जगत् भासता है वह असत्‌रूप है तैसे ही यह शरीरादिक जगत् मन के फुरने से भासता है–मन का फुरना ही इसका कारण है ।जैसे नेत्र का कारण प्रकाश हे तैसे ही जगत का कारण चित्त है । सब जगत् आकाश मात्रहै और घट, पट, गढ़ा आदिक क्रम सहित भी असत्‌रूप है । जैसे जल में जो चक्रा वर्त्त भासते हैं वे असत्‌रूप हैं तैसे ही पर्वतादिक जगत् असत्यरूप हैं, अपने निवास के निमित्त मन ने यह शरीर रचा है । जैसे कुसवारी अपने निवास के निमित्त गृह रचती है और आप ही बन्धन में आती है तैसे ही मन शरीरादिक को रचकर आप ही दुःखी होता है । ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो संकल्प से रहित सिद्ध हो और मन के यत्न से सिद्ध न हो कठिन क्रूर पदार्थ भी मन से सिद्ध होता है । परमात्मा जो देव है वह सर्वशक्तिमान् है, मन भी उसी की शक्ति है, वह कौन पदार्थ है जो मन से सिद्ध न हो, मन से सब कुछ बन जाता है, क्योंकि जो कुछ पदार्थ हैं उनमें सत्ता परमात्मा की है–उससे कुछ भिन्न नहीं । इससे परमात्मा देव में सब कुछ सम्भव है । आदि चित्तकला ब्रह्मारूप होकर उदय हुई है भावना के अनुसार उसने आपको ब्रह्मा का शरीर देखा और उसने कलनारूप देवता, दैत्य, मनुष्य, स्थावर, जंगमरूप जगत् रचा है और संकल्प में स्थित है । जब तक उसका संकल्प है तब तक तैसे ही स्थित है । जब संकल्प मिट जावेगा तब सृष्टि भी नष्ट हो जावेगी । जैसे तेल से रहित दीपक निर्वाण हो जाता है तैसे ही जगत् भी हो जावेगा क्योंकि आकाश वत् सब ही कलनामात्र है और दीर्घस्वप्नवत् स्थित है । वास्तव में न कोई उपजा है न मरता है परमार्थ से तो ऐसे हैं अज्ञान से सब पदार्थ विकारसंयुक्त भासते हैं । न कोई वृद्धि है, न कोई नष्ट होता है उसमें और विकार कैसे मानिये? जैसे पत्र की रेखा के उपजने और नाश होने में वन को कुछ अधिकता और न्यूनता नहीं होती तैसे ही शरीर के उपजने और नष्ट होने में आत्मा को लाभ हानि कुछ नहीं । सब जगत् दृश्यभ्रान्ति से भासता है । ज्ञानदृष्टि से देखो अज्ञानीवत् क्यों मोहित होते हो? जैसे मृगतृष्णा का जल प्रत्यक्ष भासता है तो भी मिथ्या भ्रममात्र होता है तैसे ही ब्रह्मा से आदि तृणपर्यन्त सब भ्रान्तिमात्र है । जैसे आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसे ही मिथ्या ज्ञान से जगत् भासता है । जैसे नौका पर बैठे को तट के वृक्ष, स्थान चलते दृष्टि आते हैं तैसे ही भ्रम दृष्टि से जगत् भासता है । इस जगत् को तुम इन्द्रजाल वत् जानो, यह देह पिंजर है और मन के मनन से असत्यरूप हो सत्य की नाईं स्थित हुआ है । जगत् द्वैत नहीं है माया से रची ब्रह्मसत्ता ही ज्यों की त्यों स्थित है और शरीरादिक कैसे किसकी नाईं स्थित कहिये । पर्वत तृणादिक जो जगत् आडम्बर है वह भ्रान्तिमात्र मन की भावना से दृढ़ हैं भासता है और असत्य ही सत्यरुप हो स्थित हुआ है । हे रामजी! यह प्रपञ्च नाना प्रकार की रचनासंयुक्त भासता है पर भीतर से तुच्छ है । इसकी तृष्णा त्याग के सुखी हो, जैसे स्वप्न में बड़े आडम्बर भासते हैं सो भ्रान्ति मात्र असत्यरूप हैं वास्तव में कुछ नहीं तैसे ही यह जगत् दीर्घकाल का स्वप्न है, चित्त से कल्पित है और देखने में बड़ा विस्ताररूप भासता है विचार करके ग्रहण करिये तो कुछ हाथ नहीं आता । जैसे स्वप्नसृष्टि जाग्रत् में कुछ नहीं मिलती और कुसवारी को अपना रचा गृह बन्धन करता है तैसे ही अपना रचा जगत् मन को दुःख देता है, इससे इसको त्याग करो । जिस पुरुष ने इसको असत्य जाना है वह जगत् की भावना फिर नहीं करता । जैसे मृगतृष्णा के जल को जिसने असत्य जाना है वह पान के निमित्त नहीं धावता और जैसे अपने मन की कल्पी स्त्री से बुद्धिमान् राग नहीं करता, तैसे ही ज्ञानवान् जगत् के पदार्थों में राग नहीं करता और जो अज्ञानी है वह राग करके बन्धायमान होता है । जैसे स्वप्न में असत्य स्त्री से चेष्टा करता है तैसे ही अज्ञानी असत्य जगत् को

सत्य जान के चेष्टा करता है, बुद्धिमान असत्य मानकर नहीं करता । जैसे रस्सी में सर्प भासता है तैसे ही मन के मोह से जगत् भासता है और भयदायक होता है पर सब भावनामात्र है । जैसे जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब चञ्चल भासता है और उसके ग्रहणकी इच्छा बालक करता है, बुद्धिमान नहीं करता, तैसे ही जगत् के पदार्थों की इच्छा अज्ञानी करते हैं ज्ञानवान् नहीं करते । हे रामजी! यह मैंने परम गुणों का समूह तुमको उपदेश किया है इसकी भावना करके तुम सुखी होगे जो मूर्ख इन वचनों को त्याग के दृश्य को सुखरूप जान के उसमें लगते हैं वे ऐसे हैं जैसे कोई शीत से दुःखी हो और प्रत्यक्ष अग्नि को त्यागकर जल में प्रतिबिम्बित अग्नि का आश्रय करे और उससे जाड़ा निवृत्त किया चाहे तो वह मूढ़ है, तैसे ही आत्मविचार को त्याग के जो जगत् के पदार्थों की सुख के निमित्त इच्छा करते हैं वे मूढ़ हैं । सब जगत् असत्यरूप है और मन के मनन से रचा है । जैसे स्वप्न में चित्त से नगर भासता है तो यदि वह नगर जलता भासे तो कदाचित् नहीं जलता । तैसे ही जगत् के नाश हुए आत्मा का नाश नहीं होता । वह उपजने, बढ़ने, घटने और नाश होने से रहित है । जैसे बालक अपनी क्रीड़ा के निमित्त हाथी घोड़ा नगर रचता है और समेट लेता है तो वह उसके उपजने मिटने में ज्यों का त्यों है और जैसे बाजीगर बाजी को फैलाता है और फिर लय करता है तो उत्पत्ति लय में बाजीगर ज्यों का त्यों है तैसे ही आत्मा जगत् की उत्पत्ति लय में ज्यों का त्यों है उसका कुछ कदाचित नष्ट नहीं होता । जो सब सत्य है तो किसी का नाश नहीं होता इस कारण जगत् में हर्ष शोक करना योग्य नहीं और जो सब असत है तो भी नाश किसी का न हुआ और दुःख भी किसी को न हुआ । सत्य असत्य दोनों प्रकार हर्ष शोक नहीं होता । स्वरूप से किसी का नाश नहीं और सब जगत् ब्रह्मरूप है तो दुःख सुख कहाँ है? ब्रह्मसत्ता में कुछ द्वैत जगत् बना नहीं, सब जगत् प्रत्यक्षरूप भासता है तो भी असत्रूप है । उस असत्रूप संसार में ज्ञानवान् को ग्रह्ण करने योग्य कोई पदार्थ नहीं और सब जगत् में ब्रह्म तत्त्व है–कुछ भिन्न नहीं तो त्रिलोकी में किस पदार्थ के ग्रहण त्याग की इच्छा कीजिये? जगत् सत्यरूप हो अथवा असत्य ज्ञानवान् को सुख दुख कोई नहीं । और भ्रान्तिदृष्टि अज्ञानी को दुःखदायक होती है । जो वस्तु आदि अन्त में असत्य है उसे मध्य में भी असत्य जानिये और उसके पीछे जो शेष रहता है वह सत्यरूप है जिससे असत्य भी सिद्ध होता है । जिनकी बालबुद्धि मोह से आवृत् है वे जगत् के पदार्थों की इच्छा करते हैं–बुद्धिमान् नहीं करते । बालक को जगत् विस्ताररूप भासता है, उससे वे अपना प्रयोजन चाहते हैं और सुख दुःख भोगते हैं । तुम बालक मत हो, जगत् अनित्य है इसकी आस्था त्याग कर सत्यात्मा में स्थित हो । जो आप संयुक्त सम्पूर्ण जगत् असत् रूप जानो तो भी विषाद नहीं और जो आप संयुक्त सब सत्य जानो तो भी इस दृष्टि से हर्ष शोक नहीं । ये दोनों निश्चय सुखदायक हैं । आप संयुक्त सब असत्यरूप जानोगे तो दुःख न होगा । वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तब सूर्य अस्त हुआ और सब सभा नमस्कार करके अपने–अपने स्थान को गई और सूर्य की किरणों के निकलते ही फिर अपने अपने आसन पर आ बैठे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथार्थोपदेशयोगो नाम पञ्चचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४५॥

अनुक्रम

यथाभूतार्थबोधयोग

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धन, स्त्री आदि नष्ट हो जावें तो इन्द्रजाल की बाजी वत् जानिये। इससे भी शोक का अवसर नहीं होता। जो क्षण में दृष्टि आये और फिर नष्ट हो गये उनका शोक करना व्यर्थ है। जैसे गन्धर्वनगर जो रत्नमणि से भूषित किया हो अथवा दूषित हुआ हो उसमें हर्ष शोक स्थान कहाँ है; तैसे ही अविद्या से रचे पुत्र, स्त्री, धनादिक के सुख दुःख का क्रम कहाँ है? जो पुत्र, धनादिक बड़े तो भी हर्ष करना व्यर्थ है, क्योंकि मृगतृष्णा का जल बढ़ा भी अर्थ सिद्ध नहीं करता, तैसे ही धन, दारादिक बढ़े तो हर्ष कहाँ है? शोकवान् ही रहता है। वह कौन पुरुष है जो मोहमाया के बढ़े शान्तिमान् हो वह तो दुःखदायक ही है जो मूढ़ हैं वे भोगों को देखके हर्षवान् होते हैं और अधिक से अधिक चाहते हैं और बुद्धिमानों को उन लोगों से वैराग्य उपजता है। जिनको आत्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ और भोगों को अन्तवन्त नहीं जानते उनको भोग की तृष्णा बढ़ती है और जो बुद्धिमान हैं वे भोगों को आदि से ही अन्त वन्त जानते हैं और दुःखरूप जानकर उनकी इच्छा नहीं करते। इससे हे राघव! ज्ञानवान् की नाईं व्यवहारों में बिचरो। जो नष्ट हो सो हो और जो प्राप्त हो सो हो उसमें हर्ष शोक न करना। उसको यथाशास्त्र हर्ष शोक से रहित भोगों और जो न प्राप्त हो उसकी इच्छा न करो। यह पण्डितों का लक्षण है। हे रामजी! यह संसार दुःखरूप है इसमें मोह को प्राप्त न होना, जैसे ज्ञानवान् बिचरते हैं तैसे ही बिचरना, मूढ़वत् नहीं बिचरना। यह संसार आडम्बर अज्ञान से रचा है, जो इसको ज्यों का त्यों नहीं देखते वे कुबुद्धि नष्ट होते हैं संसार के जिन जिन पदार्थों की इच्छा होती है वे सब बन्धन के कारण हैं और उनमें जीव डूब जाता है। जो बुद्धिमान हैं वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते और जिसने निश्चय से जगत् को असत्यरूप जाना है वह किसी पदार्थ में बन्धवान् नहीं होता, अविद्यारूप पदार्थ उसको खेद नहीं देते और वस्तुबुद्धि से वे खर्च नहीं सकते। जिसकी बुद्धि में यह निश्चय हुआ कि सर्व मैं हूँ वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता। हे रामजी! शुद्ध तत्त्व जो सत्य असत्य जगत् के मध्यभाव में है उसका हृदय से आश्रय करो और जो भीतर बाहर जगत् दृश्य पदार्थ हैं उनको मत ग्रहण करो। इनकी आस्था त्याग करके परमपद को प्राप्त होकर अति विस्तृत स्वच्छरूप आत्मा में स्थित हो और राग द्वेष से रहित सब कार्य करो। जैसे आकाश सब पदार्थों में व्यापक और निर्लेप है तैसे ही सब कार्य करते भी निर्लेप हो। जिस पुरुष की पदार्थों में न इच्छा है, न अनिच्छा है और जो कर्मों में स्वाभाविक स्थित है उसको कर्म का स्पर्श नहीं होता वह कमलवत् सदा निर्लेप रहता है। देखना,सुनना आदिक व्यवहार इन्द्रियों से होता है, इससे तुम इन्द्रियों से व्यवहार करो अथवा न करो परन्तु इनमें निरिच्छित रहो और अभिमान से रहित होकर आत्मतत्व में स्थित हो। इन्द्रियों के अर्थ का सार जो अहंकार है जब यह हृदय में न फुरेगा तब तुम योग्य पद को प्राप्त होगे और राग द्वेष से रहित संसार समुद्र को तर जावोगे। जब इन्द्रियों के राग द्वेष से रहित हो तब मुक्ति की इच्छा न करे तो भी मुक्तिरूप है। हे रामजी! इस देह से आपको व्यतिरेक जानकर जो उत्तम आत्मपद है उसमें स्थित हो जावो तब तुम्हारा ऐसा परम यश होगा जैसे पुष्प से सुगन्ध प्रकट होती है। इस संसाररूपी समुद्र में वासनारूपी जल है उसमें जो आत्मवेत्ता बुद्धिरूपी नाव पर चढ़ते हैं वे तर जाते हैं और जो नहीं चढ़ते वे डूब जाते हैं। यह बोध मैंने तुमसे क्षुरधार की नाईं तीक्ष्ण कहा है। यह अविद्या का काटनेवाला है इसको विचारकर आत्मतत्त्व में स्थित हो। जैसे तत्त्ववेत्ता आत्मतत्त्व को जानकर व्यवहार में विचरते हैं तैसे ही तुम भी बिचरो, अज्ञानी की नाईं न बिचरना। जैसे जीवन्मुक्त पुरुष का आचार है उसको तुम भी अंगीकार करना, भोगों से दीन न होना और मूढ़ के आचारवत् आचार न करना जो परावर परमात्मवेत्ता पुरुष हैं

वे न कुछ ग्रहण करते न त्याग करते हैं और न किसी की वाञ्छा करते हैं । वे जैसा व्यवहार प्रारब्धवेग से प्राप्त होता है उसी में बिचरते हैं और राग द्वेष किसी में नहीं करते । बड़ा ऐश्वर्य हो, बड़े गुण हों, लक्ष्मी आदिक बड़ी विभूति हो तो भी ज्ञानवान् अज्ञानीवत् अभिमान नहीं करते । महाशून्य वन में खेदवान् नहीं होते और देवता का सुन्दर वन विद्यमान् हो तो उससे हर्षवान् नहीं होते उन्हें न किसी की इच्छा है, न त्याग है, जैसी अवस्था आन प्राप्त हो रागद्वेष से रहित उसी में बिचरते हैं । जैसे सूर्य समभाव से बिचरता है तैसे ही वे अभिमान से रहित देहरूपी पृथ्वी में बिचरते हैं अब तुम भी विवेक को प्राप्त हो जावो, बोध के बल में स्थित हो और किसी पदार्थ की ओर दृष्टि न करो । निर्वैर, निर्मनदृष्टि सहित बिचरो और समतासहित पृथ्वी में स्थित होकर संसार की इच्छा दूर से त्यागकर यथाव्यवहार में बिचरो और परम शान्तरूप रहो । बाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार निर्मल वाणी से वशिष्ठजी ने कहा तब रामजी का निर्मल चित्त अमृत से शीतल और पूर्ण हुआ । जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा अमृत से शीतल और पूर्ण होता है तैसे ही रामजी शान्त होकर पूर्ण हुए ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे यथाभूतार्थबोधयोगो नाम षट्चत्वारिंश्त्तमस्सर्गः ॥४६॥

अनुक्रम

जगत्सत्यासत्यनिर्णय

विरक्तरूप,कोमल और उचित वचनों से मैं स्वस्थ हुआ हूँ और उन अमृतरूपी वचनों को पानकर मैं तृप्त नहीं होता । हे भगवन्! आप राजस–सात्विक जगत् कहने लगे थे सो कुछ संक्षेप से कहा था कि उसमें अवकाश पाकर आपने ब्रह्माजी की उत्पत्ति कही उसमें मुझे यह संदेह उत्पन्न हुआ कि कहीं ब्रह्मा की उत्पत्ति कमल से कही है, कहीं आकाश से कही कहीं अण्डे से कही और कहीं जल से कही है सो विचित्ररूप शास्त्र ने कैसे कहा । आप सब संशय के नाशकर्ता हैं कृपा करके शीघ्र मुझको उत्तर दीजिये । वशिष्ठजी बोले, हे राम जी! कई लक्ष ब्रह्मा और अनेक विष्णु और रुद्र हुए हैं और अब भी अनेक ब्रह्माण्ड में अनेक प्रकार के व्यवहार संयुक्त प्रस्तुत हैं । कितने तुल्य होते हैं, कितने बड़े छोटे काल के स्वप्न जगत् की नाईं उत्पन्न होते हैं, कितने बीते हैं और कितने आगे होंगे उनमें से तुमने एक ब्रह्मा की उत्पत्ति पूछी है सो सुनो । यह भी अनेक प्रकार के होते हैं, कभी सृष्टि सदाशिव से उत्पन्न होती है, कभी ब्रह्मा से, कभी विष्णु से और कभी मुनीश्वर रच लेते हैं । कभी ब्रह्मा कमल से उपजते हैं, कभी जल से कभी पवन से और कभी अण्डे से उपजे हैं । कभी किसी ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, कभी विष्णु और कभी सदाशिव होते हैं । कभी सृष्टिमें पर्वत उपजते हैं और कभी मनुष्यों से और कभी वृक्षों से पूर्ण होती है । सृष्टि की उत्पत्ति भी अनेक प्रकार से होती है, किसी ब्रह्माण्ड में मृत्यु का भय होता है, कभी पाषाणमय होती है कभी माँसमय होती है और कभी सुवर्णमय होती है । कई सृष्टियों में चतुर्दश लोक हैं, किसी सृष्टि में कई लोक हुए हैं और किसी सृष्टि में ब्रह्मा नहीं हुए । इसी प्रकार अनेक सृष्टि चिदाकाश ब्रह्मतत्त्व से फुरी हैं और फिर लय हुई हैं । जैसे समुद्र में तरंग उपजकर लय होते हैं तैसे आत्मा में अनेक सृष्टि उपजकर लय हो जाती हैं । जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदी भासती है और पुष्प में सुगन्ध होती है तैसे ही परमात्मा में जगत् है । जैसे सूर्य की किरणों में त्रसरेणु भासते हैं और उनकी संख्या नहीं कही जाती यदि कोई ऐसा समर्थ भी हो कि उनकी संख्या करे, परन्तु ब्रह्मतत्त्व में जो सृष्टि फुरती हैं उनकी संख्या वह भी न कर सकेगा । जैसे वर्षाऋतु में ईखों के खेत में मच्छर होते हैं और नष्ट हो जाते हैं तैसे ही आत्मा में सृष्टि उपजकर नष्ट हो जाती है । वह काल नहीं जाना जाता जिस काल में सृष्टि का उपजना हुआ है । आत्म तत्त्व में नित्य ही सृष्टि का उपजना और लय होना है । जैसे समुद्र में पूर्वा पर तरंग फुरते हैं उनका अन्त नहीं, इसी फ्रकार सृष्टि का आदि और अन्त कुछ नहीं जाना जाता । देवता, दैत्य, मनुष्य आदिक कितने उपजकर लय हुए हैं और कितने आगे होंगे। जैसे यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मा से रचा गया है तैसे ही अनेक ब्रह्माण्ड हो गये हैं और जैसे अनेक घटिका एक वर्ष में व्यतीत होती हैं तैसे बीते हैं । जैसे समुद्र में तरंग होते हैं तैसे ही ब्रह्मतत्त्व में असंख्य जगत् होते हैं । कितनी सृष्टि हो बीती है, कितनी अब हैं और कितनी आगे होगी । जैसे मृत्तिका में घट होता है, वृक्ष में अनेक पत्र होते हैं फिर मिट जाते हैं और जैसे जबतक समुद्र में जल है तब तक तरंग आवर्त्त निवृत्त नहीं होते उपजते और लय होते हैं तैसे ही ब्रह्म चिदाकाश है । त्रिलोकीरूप जगत् उपज–उपजकर उसी में लय होते हैं । जब तक अपने स्वरूप का प्रमाद है तब तक विकारसंयुक्त जगत् है और बड़े विस्तार से भासता है । जब आत्मा स्वरूप देखोगे तब कोई विकार न भासेगा । जब तक आत्मदृष्टि से नहीं देखा तब तक आभास दशा में उपजते और मिटते हैं पर न सत्य कहे जा सकते हैं और न असत्य कहे जा सकते हैं वास्तव में ब्रह्म और जगत् में कुछ भेद नहीं, समुद्र में तरंग की नाईं अभेद है, अविद्या से भिन्न होकर भासते हैं और विचार किये से निवृत्त हो जाते हैं । चर अचररूप जगत् जो नाना प्रकार की चेष्टा संयुक्त अनन्त सर्वेश्वर आत्मा में फुरते हैं सो उससे भिन्न नहीं जैसै शाखा और फूल, फल वृक्ष

से भिन्न नहीं और भिन्न भासते हैं तो भी अभिन्न हैं, तैसे ही आत्मा से जगत् भिन्न भासते हैं तो भी भिन्न नहीं आत्मरूप हैं । हे रामजी! मैंने जो तुमसे चतुर्द्दशभुवन संयुक्त सृष्टि कही हैं उनमें कोई अल्परूप है और कोई बड़ी है पर सब परमात्मा आकाश में उपजती हैं और वही रुप है । ब्रह्मतत्त्व से कभी प्रथम ब्रह्म आकाश उपजता है और प्रतिष्ठा पाता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता है और उसका नाम आकाशज होता है । कभी प्रथम पवन उपजता है और प्रति ष्ठित होता है फिर उससे ब्रह्मा उपजता सो वायुज कहाता है । कभी प्रथम जल उत्पन्न होता है उससे ब्रह्मा उपजकर जलज नाम होता है और कभी प्रथम पृथ्वी उत्पन्न होके विस्तारभाव को प्राप्त होती है और उससे ब्रह्मा उपजता है और पार्थिव उसका नाम होता है एवं अग्नि से उपजता है तब अग्निज नाम पाता है । हे रामजी! यह पञ्चभूत से जो ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई वह तुमसे कही । जब चार तत्त्व पूर्ण होते हैं और पञ्चम तत्त्व सबसे बढ़ता है तब उससे प्रजापति उपजकर अपने जगत् को रचता है और कभी ब्रह्मतत्त्व से आप ही फुर आता है । जैसे पुष्प से सुगन्ध फुर आती है तैसे ब्रह्माजी उपजकर पुरुषभावना से पुरुष स्थित होता है और उसका लाभ स्वयंभू होता है । कभी पुरुष जो विष्णुदेव है उसकी पीठ से उप जता है, कभी नेत्र से प्रकट होता है और कभी नाभि से उत्पन्न होता है तब प्रजापति, नेत्रज, पद्मज नाम होता है वास्तव में सब माया मात्र है और स्वप्नवत् मिथ्यारूप हो सत्य हो भासता है जैसे मनोराज की सृष्टि भास आती है तैसे ही यह जगत् है और जैसे नदी में तरंग अभिन्नरूप फुरते हैं तैसे ही आत्मा में अभेद जगत् फुरता है वास्तव में दूसरा कुछ नहीं हैं जब शुद्धसत्ता का आभास संवेदन फुरता है तब वही जगत्रूप हो भासता है । जैसे बालक के मनोराज में सृष्टि फुरती है सो वास्तव में कुछ नहीं होती तैसे ही यह है । कभी शुद्ध आकाश में मननकला फुरती है उससे अण्डा उपजता है और अण्डा से ब्रह्मा उपज आता है और कभी पुरुष विष्णुदेव जल में वीर्य डालता है उससे पद्म उपजता है और उसी पद्म से ब्रह्मा प्रकट होते हैं और कभी सूर्य से फुर आते हैं । इसी प्रकार विचित्ररूप रचना ब्रह्मपद से उपजती है और फिर लय हो जाती है । तुम्हारे दिखाने के निमित्त मैंने अनेक प्रकार की उत्पत्ति कही है पर वह सब मन के फुरनेमात्र है और कुछ नहीं । हे रामजी! तुम्हारे प्रबोध के निमित्त मैंने सृष्टि का क्रम कहा है पर इसका रूप मनोमात्र है, उपज उपजकर लय हो जाता है । फिर दुःख, सुख, अज्ञान, ज्ञान, बन्ध–मोक्ष होते हैं और मिट जाते हैं । जैसे दीपक का प्रकाश उपजकर नष्ट हो जाता है तैसे ही देह उपजकर नष्ट हो जाते हैं काल की न्यूनता और विशेषता यही है कि कोई चिरकाल पर्यन्त रहता है और कोई शीघ्र ही नष्ट हो जाता है परन्तु सबही विनाशरूप हैं । ब्रह्मा से आदि कीट पर्यन्त जो कुछ आकार भासता है वह काल के भेद को त्याग कर देखो कि सब नाशरूप है । कभी सत्ययुग, कभी त्रेतायुग, कभी द्वापर और कभी कलियुग फिर फिर आते और जाते हैं । इसी प्रकार काल का चक्र भ्रमता है । मन्वन्तर का आरम्भ होता है और काल की परम्परा व्यतीत होती है । जैसे प्रातःकाल से फिर प्रातःकाल आता है तैसे ही जगत् की यही गति है, अन्धकार से प्रकाश होता है और जगत् ब्रह्मतत्त्व से स्फुरणरूप होकर फिर लीन होता है । जैसे तप्त लोहे से चिनगारियाँ उड़ती हैं सो लोहे में ही होती हैं तैसे ही यह सब भाव चिदाकाश से उपजता है और चिदाकाश में ही स्थित है । कभी अव्यक्त रूप होता है और कभी प्रकट होता है । जैसे समुद्र में तरंग और वृक्ष में पत्र होते हैं तैसे ही आत्मा में जगत् है और जैसे नेत्रदूषण से आकाश में दो चन्द्रमा भासते हैं तैसे ही चित्त के फुरने से आत्मा में जगत् भासते हैं और उसी में स्थित और लय होते हैं । जैसे चन्द्रमा किरणें उत्पन्न और स्थित होकर लय होती है तैसे ही आत्मा में जगत है सो स्वरूप से कहीं आरम्भ नहीं हुआ, मन के फुरने से भासता है । हे रामजी! आत्मा सर्व शक्ति है जो शक्ति उससे फुरती है वह उसी का रूप हो भासती है । सब जगत् असत्यरूप है जिसके चित्त में महाप्रलय की नाईं असत्य का निश्चय है वह

पुरुष फिर संसारी नहीं होता स्वरूप में लगा रहता है । ऐसे महासती ज्ञानवान् की दृष्टि में सर्वब्रह्म का निश्चय होता है हमको यही निश्चय है कि संसार नहीं, सर्वब्रह्मदत्त ही है और सदा विद्यमान है । अज्ञानी को जगत् सत्य भासता है सो फिर फिर उपजकर नष्ट होता है । स्वरूप विनशने से नष्ट नहीं होता परन्तु अज्ञानी जगत् को असत्य नहीं जानते सदा स्थित जानते हैं उससे नष्ट होते हैं । जगत् के सब पदार्थ विनाशरूप हैं परन्तु दृश्य से जगत् असत्य नहीं भासता । जिन पदार्थों की सत्यता दृढ़ हो गई है वे नाशवान् हैं– कुछ न रहेगा । पदार्थ सत्य भासता है कोई असत्य भासता है, इस जगत् में ऐसा कौन पदार्थ है जो कलना से विस्ताररूप ब्रह्म में न बने । यह जगत् महाप्रलय में नष्ट हो जाता है और फिर उत्पन्न होता है । जन्म और मरण होता है और सुख, दुःख, दिशा, आकाश, मेघ, पृथ्वी, पर्वत सब फिर उपज आते हैं । जैसे सूर्य की प्रभा उदय अस्त को प्राप्त होती रहती है तैसे ही सृष्टि उदय अस्त होती भासती है । देवता और दैत्य लोकान्तर क्रम होते हैं और स्वर्ग, मोक्ष, इन्द्र, चन्द्रमा, नारायण, देव, पर्वत, सूर्य, वरुण, अग्नि आदिक लोकपाल फिर फिर होते हैं । सुमेरु आदिक स्थान फुर आते है और तम रूप हस्ति को भेदने को सूर्यरूप केसरी सिंह उपज आते हैं । स्वर्ग, इन्द्र, अप्सरागण अमृतमय होते हैं और धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, क्रिया, शुभ, अशुभरूप आते हैं और यज्ञ, दान, होम आदिक सर्वक्रियासंयुक्त संसारी जीव होते हैं। शुभ कर्म करनेवाले स्वर्ग में विचरते हैं और सुख भोगते हैं पर पुण्य के क्षीण हुए गिरा दिये जाते हैं और मृत्यु लोक में आते हैं । इस प्रकार कर्म करते, उपजते और नष्ट होते हैं । स्वर्गरूपी कमल में इन्द्ररूपी भँवरा है जो स्वर्गकमल की सुगन्ध को लेने आता है । जितना पुण्य कर्मक्रिया होती है उतने काल सुख भोगकर नष्ट हो जाते हैं और सत्ययुग आदिक युग और सब देश, काल, क्रिया, द्रव्य, जीव उपज आते हैं । जैसे कुलाल चक्र से बासन बनाता है तैसे ही चित्तकला फुरने से जगत् के अनेक पदार्थों को उत्पन्न करती है । जीवसंयुक्त सुन्दर स्थान होते हैं और फिर नष्ट हो जाते हैं । असत्यमात्र जगत्जाल जीव से रहित शून्य मसान हो जाता है और कुलाचल पर्वत के आकार वत् मेघ जल की वर्षा करते हैं उसमें जीव बुद्बुदेरुप होकर स्थित होते हैं । द्वादश सूर्य उदय होते हैं शेषनाग के मुख से अग्नि निकलती है उससे सब जगत् दग्ध हो जाता है और फिर अग्नि की ज्वाला शान्त हो जाती है, एक शून्य आकाश ही शेष रहता है । और रात्रि हो जाती है । जब रात्रि का भोग हो चुकता है तब फिर जीव जीर्ण देह से संयुक्त मनरूप ब्रह्मा रच लेता है । इस प्रकार शून्य आकाश में मन जगत् को रचता है । जैसे शून्य स्थान में गन्धर्व माया से नगर रच लेता है तैसे ही जगत् को मन रच लेता है और फिर प्रलय हो जाता है । इस प्रकार जगत्गण उपजकर महाप्रलय में नष्ट होते हैं और ब्रह्मा के दिन क्षय हुए फिर जब ब्रह्मा का दिन होता है तब फिर रच लेता है, फिर महा प्रलय में ब्रह्मादिक सब अन्तर्धान हो जाते हैं । इसी प्रकार प्रलय महाप्रलय होके अनेक जगत्गण व्यतीत होते हैं और महादीर्घ मायारूपी कालचक्र फिरता है उसमें मैं तुमको सत्य और असत्य क्या कहूँ? सब भ्रान्तरूप दासुर के आख्यानवत् हैं और कल्पनामात्र रचित चक्र वास्तव में शून्य आकाशरूप है और बड़े आरम्भसंयुक्त विस्तार रूप भासता है, पर असत्यरूप है । जैसे भ्रम से दूसरा चन्द्रमा भासता है तैसे ही यह जगत् मूढ़ों के हृदय में सत्य भासता है । तुम मूढ़ न होना, ज्ञानवान्वत् विचारकर जगत् को असत्य जानना ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थिति प्रकरणे जगत्सत्यासत्यनिर्णयो नाम सप्तचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४७॥

अनुक्रम

दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जिनका भोग और ऐश्वर्य में चित्त खिंचा है वे नाना प्रकार के राजस, तामस और सात्विक कर्म बड़े आरम्भ से करते हैं । पर वे मूढ़ आत्मशान्ति नहीं पाते जब वे भोग की तृष्णा से रहित हों तब आत्मा को देखें । जिस पुरुष को इन्द्रियाँ वश नहीं कर सकतीं वह आत्मा को हाथ में बेलफलवत् प्रत्यक्ष देखता है और जिस पुरुष ने विचार करके अहंकाररूपी मलीन शरीर का त्याग किया है उसका शरीर आत्म रूप हो जाता है । जैसे सर्प कञ्चुली को त्यागता है और नूतन पाता है तैसे ही मिथ्या शरीर को त्यागकर आत्मविचार से वह आत्मशरीर को पाता है । ऐसे जो निरहंकार आत्मदर्शी पुरुष हैं वे जगत् के पदार्थों में आसक्त भासते हैं, पर जन्ममरण नहीं पाते । जैसे अग्नि से भूना बीज खेत में नहीं उपजता तैसे ही ज्ञानवान् फिर जन्म नहीं पाता । जिस अज्ञानी की भोगों में आसक्त बुद्धि है वह मन और शरीर के दुःख से दुःखी होकर बारम्बार जन्म और मरण पाता है । जैसे दिन होता है और फिर रात्रि होती है तैसे ही वह जन्ममरण पाता है । इससे तुम अज्ञानी की नाईं न होना । व्यवहार चेष्टा जैसे अज्ञानी की होती है तैसे ही करो परन्तु हृदय से भोगादिक की ओर चित्त न लगाकर आत्मपरायण हो । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! आपने जो कहा कि संसारचक्र दासुर के आख्यानवत् है, कल्पना करके रचित है और उसका आकार वास्तव में शून्य है यह आपने क्या कहा? इसको प्रकट करके कहिये । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! मायारूप जगत् मैंने वर्णन के निमित्त तुमसे कहा है और दासुर के प्रसंग से कुछ प्रयोजन न था परन्तु तुमने पूछा है तो अब सुनो । हे रामजी! इस सृष्टि में मगध नाम एक देश है जो बड़े बड़े कदम्बों, वनस्पतियों और तालों से विचित्ररूप पंखों सहित मन के मोहनेवाला अनेक वृक्षों और फल फूलों से पूर्ण है जिन पर कोकिला आदिक पक्षी शब्द करते हैं । उस नगर में एक धर्मात्मा तपसी दासुर नाम हुआ जो वन में जाकर कदम्ब वृक्ष पर बैठकर तप करता था । रामजी ने पूछा, हे भगवन्! यह ऋषीश्वर तपसी वन में किस निमित्त आया था और कदम्ब वृक्ष पर किस निमित्त बैठा वह कारण कहिये? वशिष्ठजी बोले,हे रामजी! सरलोमा नाम ऋषीश्वर उसका पिता मानों दूसरा ब्रह्मा उस पर्वत पर रहता था । उसके गृह में दासुर नाम पुत्र हुआ–जैसे बृहस्पति के गृह में कच हो । निदान दासुर संयुक्त उसने वन में चिरकाल व्यतीत किया और आयु के क्षीण हुए देह का त्यागकर स्वर्ग लोक में गया जैसे पक्षी आलय को त्यागकर आकाश में उड़ता है तब उस वन में दासुर अकेला रह गया और पिता के वियोग से ऐसे रुदन करने लगा जैसे हथिनी वियोग से कुरलाती है और हिमऋतु में कमल की शोभा नष्ट हो जाती है तैसे ही दीन हो गया । वहाँ अदृश शरीर वन देवी थी । उसने दया करके आकाशवाणी की कि हे ऋषिपुत्र! अज्ञानी की नाईं क्या रुदन करता है? यह सर्व संसार असत्‌रूप है । तू इस संसार को देखता नहीं कि यह नाशरूप और महाचञ्चल है, सबकाल उत्पन्न और विनाश होता है और कोई पदार्थ स्थित नहीं रहता । ब्रह्मा से आदि कीट पर्यन्त जो कुछ जगत् तुझको भासता है वह सब नाशरुप है– इसमें कुछ संदेह नहीं । इससे तू पिता के मरने का विलाप मत कर । यह बात अवश्य इसी प्रकार है कि जो उत्पन्न हुआ है वह नष्ट होगा, स्थिर कोई न रहेगा–जैसे सूर्य उदय होकर अस्त होता है । हे रामजी! जब इसी प्रकार उस देवी की वाणी दासुर ने सुनी तो धैर्यवान् हुआ और जैसे मेघ का शब्द सुनकर मोर प्रसन्न होता है तैसे शान्तिमान् होकर यथाशास्त्र पिता की सब क्रिया की । इसके अनन्तर सिद्धता के निमित्त तत्पद का उद्यम किया परन्तु अज्ञात हृदय था । ऐसा श्रोत्रिय होकर तप के निमित्त उठ विचार किया कि कोई पवित्र स्थान हो वहाँ जाकर तप करूँ । निदान देखता देखता पृथ्वी के किसी स्थान में चित्त विश्रान्तवान् न हुआ । सब पृथ्वी उसको अशुद्ध ही दीखी, कहीं कोई विघ्न भासे और कहीं कोई

विघ्न दृष्टिगोचर हो । निदान उसने विचार किया कि और स्थान तो सब अशुद्ध हैं परन्तु वृक्ष की शाखापर बैठकर तप करूँ । ऐसा कोई उपाय हो जो वृक्ष की शाखा के अग्रभाग में मैं स्थिति पाऊँ । ऐसी चिन्तना करके उसने अग्नि जलाई और अपने मुख का माँस काटकर होमने लगा । तब देवता का मुख जो अग्नि है उसने विचारा कि ब्राह्मण का माँस मेरे मुख में न आवे और बड़े प्रकाश से देह धरकर ब्राह्मण के निकट आया और कहा, हे ब्राह्मणकुमार! जो कुछ तुझको वाञ्छित वर है वह माँग । जैसे कोई भण्डार को खोलकर मणि लेता है तैसे ही तू मुझसे वर ले । तब दासुर ने पुष्प, धूप, सुगन्ध आदिक से अग्नि का पूजन किया और प्रसन्न होकर कहा, हे भगवन्!प्राणाहुति के पवन शरीर से मैंने तप करने के निमित्त उद्यम किया है सो और कोई शुद्ध स्थान मुझको नहीं भासता इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस वृक्ष की अग्र सिखा में स्थित होने को मुझको शक्ति हो और यहाँ बैठकर मैं तप करूँ । यही वर मुझको दो । तब अग्निदेव ने कहा ऐसे ही हो । इस प्रकार कहकर अग्नि अन्तर्धान हो गया जैसे संध्याकाल के मेघ अन्तर्धान हो जाते हैं । तब वर पाके ब्राह्मणकुमार ऐसा प्रसन्न हुआ जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा पूर्ण कलाओं से प्रसन्न होता है और जैसे चन्द्रमा के प्रकाश को पाकर कमलिनी शोभित होती है तैसे ही वर पाके वह शोभित हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने वनोपरुदनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमस्सर्गः ॥४८॥

अनुक्रम

दासुरोपाख्याने अवलोकनं

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस प्रकार वर को पाकर दासुर कदम्ब वृक्ष की टास पा, जो अद्भुत और बड़ा सुन्दर था और जिसका पत्र आकाश में लगता था, जा बैठा तो उसने दिशा का चञ्चलरूप कौतुक देखा कि दृश्यरूप मानों चञ्चल पुतली है, श्याम आकाश उसका शीश है, श्यामकेश ही प्रकाशरूप है, पाताल उसके चरण है मेघरूपी वस्त्र है और पुण्यवत् गौर अंग हैं । ऐसी दृश्यरूपी एक स्त्री है, समुद्र, कैलास जिसके भूषण हैं, प्राणरूपी फुरने से चलती है, मोहरूपी शरीर है, वनस्पति रोम हैं सूर्य चन्द्रमा उसके कुण्डल हैं, पर्वत कड़े हैं, पवन प्राणवायु है दिशा हस्त हैं, समुद्र आरसी है, सूर्यादिक उष्णता उसका पित्त है और चन्द्रमा कफ है । ऐसी त्रिलोकीरूप एक पुतली है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने अवलोकनं नामैकोनपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥४९॥

अनुक्रम

दासुरसुतबोधन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! कदम्ब वृक्ष के ऊपर स्थित होकर वह तप करने लगा इसलिए उसका नाम कदम्बतपासुर हुआ। एक क्षण उसने दिशा को देख वहाँ से वृत्ति को खींचा और पद्मासन बाँध कर मन को एकाग्र किया। दासुर परमार्थपद से अज्ञात था इसलिये कर्म में स्थित था और फल की ओर उसका मन था। मन से उसने यज्ञ का आरम्भ किया और जो कुछ सामग्री की विधि थी वह सब यथाशास्त्र मन से ही की और दस वर्ष मन में व्यतीत किये। उसने सब देवताओं का पूजन किया और गोमेध, अश्वमेध, नरमेध सब यथाविधि संयुक्त मन से किये और ब्राहमणों को बहुत दक्षिणा दी। इस प्रकार समय पाकर उसका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और आत्मपद में निर्मलचित्त से स्थित हुआ ।बलात्कार से उसके हृदय में ज्ञान प्रकाशित होकर आत्मा के आगे के मलीन वासना का जो आवरण था सो नष्ट हो गया और जैसे शरत्काल में तड़ाग निर्मल होता है तैसे ही उस मुनीश्वर का चित्त संकल्प से रहित हुआ। एक दिन उसने एक वनदेवी को जिसके बड़े विशाल नेत्र, चपलरूप, पुष्पों की नाईं दाँत और रति के समान महासुन्दर शरीर था, काम के मद से पूर्ण, मन के हरनेवाली अग्र भाग में देखी कि नम्र होकर देखती है। मुनीश्वर ने उससे कहा, हे कमलनयनि! तू कौन है? कैसी तू शोभितरूप है और इन पुष्पों से संयुक्त लता में किस निमित्त आई है? तब कामदेव के मोहनेवाली गौरी बोली, हे मुनीश्वर! जो पदार्थ इस पृथ्वी में बड़े कष्ट से प्राप्त होता है वह महापुरुषों की कृपा से सुगमता से मिलता है। हम इस वन की देवियाँ लीला करती फिरती हैं और जिस निमित्त मैं तुम्हारे आगे आई हूँ वह सुनो। हे मुनीश्वर! पिछले दिन चैत्र शुक्ल त्रयोदशी थी, उस दिन इन्द्र के नन्दनवन में उत्साह हुआ था। सब वनदेवियाँ एकत्र होकर त्रिलोकी से आईं और सब पुत्रों संयुक्त पुष्पों से बड़े विलास क्रीड़ा करती थीं पर मैं अपुत्र थी इस कारण मैं दुःखित हुई और उस दुःख के दूर करने के लिये तुम्हारे पास आई हूँ। तुम अर्थ के सिद्ध कर्त्ता हो और बड़े वृक्ष पर स्थित हो। मैं अनाथ पुत्र की वाञ्छा कर तुम्हारे निकट आई हूँ, इससे मुझको पुत्र दो और जो न दोगे तो मैं अग्नि जलाकरजल मरूँगी और इस प्रकार पुत्र का दुःखदाह निवृत्त करूँगी। हे रामजी! जब इस प्रकार वनदेवी ने कहा तब मुनीश्वर हँसे और दया करके हाथ में पुष्प दिया और कहा, हे सुन्दरि, जा तेरे एक मास के उपरान्त पूजने योग्य महासुन्दर पुत्र होगा परन्तु तूने जो इच्छा धारी थी कि जो पुत्र प्राप्त न होगा तो जल मरूँगी, इससे अज्ञानी पुत्र होगा पर यत्न से उसको ज्ञान प्राप्त होगा। जब इस प्रकार मुनीश्वर ने कहा तब प्रसन्न होकर वनदेवी ने कहा, हे मुनीश्वर! मैं यहाँ रहकर तुम्हारी टहल करूँगी। परन्तु मुनीश्वर ने उसका त्याग किया और कहा, हे सुन्दरि! तू अपने स्थान में जा रह। तब वह वनदेवियों में जा रही और समय पाके उसके पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह दश वर्ष का बालक हुआ तब वह उसे मुनीश्वर के निकट ले आई और पुत्रसंयुक्त प्रणाम करके पुत्र को मुनीश्वर के आगे रखकर कहा, हे भगवन्! यह कल्याणमूर्ति बालक तुम हम दोनों का पुत्र है। इसको मैंने सम्पूर्ण विद्या सिखाकर परिपक्व किया है और अब वह सर्वका वेत्ता हुआ है, परन्तु केवल ज्ञान इसे प्राप्त नहीं हुआ जिससे इस संसार यन्त्र में फिर दुःख पावेगा। इसलिये आप कृपा करके इसको ज्ञान उपदेश करो। हे प्रभो! ऐसा कौन कुलीन है जो अपने पुत्र को मूर्ख रखना चाहे। हे रामजी! जब इस प्रकार देवी ने कहा तब मुनीश्वर बोले तुम उसको यहाँ छोड़ जावो। तब वह देवी उसको छोड़ कर चली गई बालक पिता के पास रहा और बड़े यत्न से उसको ज्ञान की प्राप्ति हुई। मुनीश्वर ने नाना प्रकार के उक्त आख्यान इतिहास और अपने दृष्टान्त कल्प कर चिरपर्यन्त पुत्र को जगाया और वेदान्त का निश्चय अनुद्वेग होकर उपदेश किया। विस्तारपूर्वक कथा के क्रम जो अनु भव और बड़े गूढ़ अर्थ हैं वे भी

कहे । और जो अपने अनुभववश से प्रत्यक्ष था सो भी बल करके उपदेश किया कि जिससे वह जागा और शान्त आत्मा हुआ । तब तो जैसे मेघ के शब्द से मोर प्रसन्न होता है तैसे वह बालक प्रसन्न हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरसुतबोधनन्नाम पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५०॥

अनुक्रम

स्वेतथवैभववर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! उसी समय मैं भी कैलासवाहिनी गंगाजी के स्नान के निमित्त अदृश शरीर संयुक्त आकाश की वीथी में सप्तर्षियों के मण्डल से चला जाता था। जिस वृक्ष पर वह बैठा था जब उसके पीछे मैं आया तो कुछ शब्द सुना कि उस वृक्ष के ऊपर से शब्द होता है। मूँदे कमल में भँवरे के शब्दवत् कोई इस प्रकार कहता है कि हे पुत्र सुन। मैं तुझसे वस्तु के निरुपण के निमित्त एक आश्चर्यमय आख्यान कहता हूँ। महापरा क्रमी और त्रिलोक में प्रसिद्ध स्वेतथ नाम का एक राजा है जो बड़ा लक्ष्मीवान् जगत् की रचनाक्रम करता है।सब मुनि जो जगत् में बड़े नायक हैं वे भी उत्तम चूड़ामणि करके उसको शीश में धरते हैं और वह असंख्य कर्म और नाना प्रकार के आश्चर्य व्यवहार करता है। उस महात्मा पुरुष को त्रिलोकी में किसी ने वश नहीं किया, सहस्त्रों उसके आरम्भ हैं और सुख और दुःख देनेवाला है। उसके आरम्भों की संख्या कुछ नहीं कही जाती–जैसे समुद्र के तरंगों की कुछ संख्या नहीं कही जाती तैसे ही उसके आरम्भ हैं और उसका परा क्रम किसी शस्त्र, अस्त्र और अग्नि से नष्ट नहीं होता। जैसे आकाशको मुष्टि प्रहार से तोड़ नहीं सकते तैसे ही वह है। उसकी विस्तृत भुजा है और लीला करके आरम्भ रचता है। उसके आरम्भ को कोई दूर नहीं कर सकता, इन्द्र, विष्णु और सदाशीव भी समर्थ नहीं हैं। हे महाबाहो! उसके तीन देह हैं जो दिशा को भर रहे हैं। उन तीनों देहों से वह जगत् में उत्तम, अधम, मध्यम रूप से फैल रहा है और बड़े विस्ताररूपी आकाश का पक्षी आकाश में रहता है और जैसे पवन आकाश में ऐसे ही वह पुरुष जगत् में फैल रहा है। उस परम आकाश में उसने बगीचे संयुक्त एक स्थान अपनी क्रीड़ा के निमित्त रचा है और पर्वत के शिखर में मोती की बेलें रची हैं। उसमें सात बावलियों से वह स्थान शोभता है और दो दीपक उसमें रचे हैं जो तेल और बाती बिना प्रकाशते हैं और शीत और उष्णरूप हैं, कभी अधः को और कभी ऊर्ध्व को नगर में भ्रमते हैं। उसने मूर्ख मनुष्य भी रचे हैं, कोई ऊर्ध्व में स्थित है कोई मध्य में और कोई अधः में स्थित है। कोई दीर्घकाल में नष्ट होते हैं कोई शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, कोई वस्त्रों से आच्छादित हैं और कोई वस्त्र रहित हैं। उस नगर में उसने नवद्वार स्थान किये हैं और उसमें निरन्तर बहुत वृक्ष रोपे हैं। उसने पञ्चदीप देखने निमित्त किये हैं और तीन स्तम्भ रचना किये हैं, जिनमें और छोटे स्तम्भ भी हैं। मूल में के स्तम्भों पर लेपन किया है और पादतल संयुक्त किये हैं। निदान महामाया से उस राजा ने वह नगर रचा है और नगर की रक्षा निमित्त सेना रची है। एक नीति देखनेवाले यक्ष हैं, विवरकगण से वे चलते नाना प्रकार की क्रीड़ा करते हैं। उन शरीरों से वह सब ठौरों में बिचरता है, यक्ष सब ठौरों में समीप रहता है और लीला करके एक स्थान को त्यागकर और स्थान में जाकर चेष्टा करता है। कभी इच्छा होती है तब चञ्चल चित्त से भविष्यत् पुर को रचकर उसमें स्थित होता है और कभी भय से वेष्टित हुआ वहाँ से उठ आता है और वेग करके गन्धर्वनगर रचता फिरता है। जब इच्छा करता है कि मैं उपजूँ तब उपज आता है और जब इच्छा करता है कि मैं मर जाऊँ तब मर जाता है। जैसे समुद्र में तरंग उपजते हैं और फिर लय हो जाते हैं उसी प्रकार वह राजा बड़े व्यवहार करता है और बारम्बार रचना करके कभी आप ही रुदन करने लगता है कि मैं क्या करूँ, मैं अज्ञानी दुःखी हूँ, और चित्त से आतुर होता है और कभी विचार करके उदय होकर बड़ा स्थूल हो जाता है–जैसे वर्षाकाल की नदी बढ़ती है तैसे ही बढ़कर आपको सुखी मानता है। और विस्तार पाकर चलता फिरता है और बड़े प्रकाश से प्रकाशता है। उस महीपति की बड़ी महिमा है और उचितरूप होकर नगर में स्थित है।

इति श्री योगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे स्वेतथवैभववर्णनन्नाममैकपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५१॥

अनुक्रम

संसारविचार

हे रामजी! जब इस प्रकार दासुर ने कहा तब पुत्र ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! वह स्वेतथ राजा कौन हे कि जगत् में जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध है और उसने कौन नगर रचा है जो भविष्यन्नगर में रहता है? रहना तो वर्तमान में होता है भविष्यत् में कैसे रहता है? यह विरुद्ध अर्थ कैसे है? इन वचनों से मेरी बुद्धि मोहित हुई है । दासुर बोले, हे पुत्र! मैं तुझसे यथार्थ कहता हूँ तू सुन; जिसके जाने से संसारचक्र को ज्यों का त्यों देखेगा कि यह वास्तव में क्या है । यह संसार आरम्भ सत्य विस्तार संयुक्त भासता है तो भी असत्यरूप है कुछ हुआ नहीं । जैसे यह संसार स्थित है तैसे मैं तुझसे कहता हूँ । यह आख्यान मैंने तुझसे जगत् निरुपण के निमित्त कहा है । हे पुत्र! जो शुद्ध अचैत्य चिन्मात्र चिदाकाश है उससे जो संकल्प उठा है उस संकल्प का नाम स्वेतथ है । वह आप ही उपजता है और आपही लीन हो जाता है । सब जगत् उसका रूप है जो बड़े विस्तार संयुक्त भासता है और उसके उपजने से जगत् उपजता और नष्ट होने से नष्ट होता है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन्द्रादिक सब उसके अवयव हैं । जैसे वृक्ष के अंग टास होते हैं और पर्वत के अंग शिखर होते हैं तैसे ही उसके अंग शून्य आकाश में हैं उससे यह जगत्रूपी नगर रचा है। प्रतिभास के अनुसन्धान से वही चित्तकला विरञ्चिपद को प्राप्त हुआ है । चतुर्दश स्थान जो कहे हैं वे विस्तार संयुक्त चतुर्दश लोक हैं और वन, बगीचे, उपवन संयुक्त पर्वत, महाचल, मन्दराचल, सुमेरु आदिक क्रीड़ा के स्थान हैं । उष्ण शीत जो दो दीपक तेल बाती कहे हैं वे सूर्य और चन्द्रमा हैं जो जगत्रूपी नगर में अधःऊर्ध्व को प्रकाशते हैं । सूर्य की किरणों का जो प्रकाश है वही मानों मोती के तरंग फुरते हैं और क्षीर जल आदि जो सात समुद्र हैं वे बावलियाँ हैं । उसमें जीव व्यवहार करते, लेते, देते, अधःऊर्ध्व को जाते हैं–पुण्य से स्वर्गलोक में जाते हैं और पाप से नरक में चले जाते हैं । जगत् में संकल्प से जो क्रीड़ा के निमित्त उसने विवरणगण रचे हैं वे देह हैं, कोई देवता होकर ऊर्ध्व स्वर्ग में रहते हैं, कोई मनुष्य होकर मध्यलोक में रहते हैं और कोई दैत्य होकर नागलोक आदिक पाताल में रहते हैं । पवनरूपी प्रवाह से समस्त यन्त्र चलते फिरते हैं, अस्थि–रूपी उनमें लकड़ियाँ हैं और रक्त–माँस से लेपन किये हैं कोई दीर्घकाल में और कोई शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । शीश पर केश श्यामवस्त्र हैं और कर्ण, नासिका, नेत्र, जिह्वा और मूत्र पुरीष के स्थान, लिंग इन्द्रिय और गुदा ये नवद्वार हैं जिनसे निरन्तर पवन चलताहै । शीत उष्ण रूपप्रान अपान हैं, नासिका आदिक उसके झरोखे हैं, भुजारूप गलियाँ हैं, और पञ्चदीपक पञ्चइन्द्रियाँ हैं। हे महाबुद्धिमान! ये सर्व संकल्परूपी माया से रचे हैं, अहंकार रूपी यक्ष है महाभयका स्थान यह अहंकार से होता है और देहरूपी विवरण अहंकाररूपी यक्षसंयुक्त विचरते हैं । वे असत्यरूप हैं परन्तु सत्य होकर इसके सात क्रीड़ा करते हैं । जैसे भाण्ड में बिलाव, बाँबी में सर्प और बाँस में मोती हैं तैसे ही देह में अहंकार है जो क्षण में उदय होता है और क्षण में शान्त हो जाता है । दीपकवत् भेद रूपी गृह में संकल्प उठता है, जैसे समुद्र में तरंग उठते हैं और भविष्यत् नगर भासता है । सुन, अपना जो कोई स्वार्थ चितवता है कि यह कार्य इस प्रकार करूँगा और फलाने दिन इस देश में जाऊँगा तो जैसे चितवता है तैसे ही भासि आता है और उसमें जा प्राप्त होता है । जब तक दुर्वासना है तब तक अनेक दुःख होते हैं और यह दुष्ट मन अहंकार से स्थूल हो जाता है और संकल्प से रहित हुए शीघ्र ही इसका नाश होता है । जब तू संकल्प नाश करेगा तब शीघ्र ही कल्याण पावेगा । अपना संकल्प उठकर आप ही को दुःखदायक होता है–जैसे बालक को अपनी

परछाहीं में वैतालकल्पना होती है और आप ही भय पाता है तैसे ही अपना संकल्प अनन्त दुःखदायक होता है उससे सुख कोई नहीं पाता। सम्पूर्ण जगत् विस्तार संकल्प से होता है और आत्मा की सत्ता से बढ़ता और फिर नष्ट हो जाता है– विचार किये से नहीं रहता। जैसे सायंकाल में धूप का अभाव हो जाता है और प्रकाश उदय हुए तम का अभाव हो जाता है तैसे ही विचार से संकल्प आप ही नष्ट हो जाते हैं। मन आप ही क्रिया करता है और आप ही दुःख पाता है और रुदन करने लगता है–जैसे वानर काष्ठ के यन्त्र की कील को हिलाकर फँसता है और दुःख पाता है, तैसे ही अपना ही संकल्प आपको दुःखदायक होता है। संकल्प से कल्पित विषय का आनन्द जब जीव को प्राप्त होता है तब वह ऊँची ग्रीवा करके हर्षवान् होता है–जैसे किसी वृक्ष के फल ऊँट के मुख में आ लगें और वह ऊँची ग्रीवा करके बिचरे तैसे ही अज्ञानी जीव विषय की प्राप्ति में ऊँची ग्रीवा करके हर्षवान् होते हैं। क्षण में जीव को विषय की प्राप्ति उपजती है और विशेष करके इष्ट की–प्राप्ति में बढ़ते हैं, पर जब कोई दुःख होता है तब वह प्रीति की प्रसन्नता उठ जाती है और क्षण में विकारी होता है और क्षण में प्रसन्न होकर वस्तुगुण की प्रीति में हर्षवान् होता है। शुभ संकल्प से शुभ को देखता और अशुभ संकल्प से अशुभ को देखता है। शुभ से निर्मल होता है और अशुभ से मलीन होता है, आगे जैसी तेरी इच्छा हो तैसा कर। स्वेतथ के जो मैंने तुझसे तीन शरीर कहे थे– उत्तम, मध्यम और अधम, वे सात्त्विक, राजस, तामस यही तीन गुण तीन देह हैं। ये ही सबके कारण जगत् में स्थित हैं जब तामसी संकल्प से मिलता है तब नीचरूप पाप चेष्टा कर्म करके महाकृपणता को प्राप्त होता है और मृतक होकर कृमि और कीट योनि में जन्म पाता है। जब राजसी संकल्प से मिलता है तब लोकव्यवहार अर्थात् स्त्री, पुत्रादिक के राग से रञ्चित होता है और पापकर्म नहीं करता तो मृतक होकर संसार में मनुष्य शरीर पाता है। जब सात्त्विकी भाव में स्थित होता है तब ब्रह्म ज्ञान परायण होता है, मोक्षपद की उसको अन्तर्भावना होती है और ब्रह्मज्ञान पाकर चक्रवर्ती राजा की नाईं स्थित होता है। जब उन भावों को त्याग करता है तब संकल्प भाव नष्ट हो जाता है और अक्षय परम पद शेष रहता है। इससे संसार दृष्टि को त्याग करके और मन से मन को वश करके भीतर बाहर जो दृश्य का अर्थ चित्त में स्थित है उस संस्कार को निवृत्त करके शान्तात्मा हो। हे पुत्र! इस बिना और उपाय नहीं। जो तू सहस्त्रवर्ष दारुण तप करे अथवा लीलावत् आपको शिलासम चूर्णकरे, समुद्र में प्रवेश करे, बड़वाग्नि में प्रवेश करे, गढ़े में गिरे, खड्गधारा के सम्मुख युद्ध करे अथवा सदाशिव, ब्रह्मा, विष्णु वा बृहस्पति दया करके तुझे उपदेश करें और पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग इत्यादिक और स्थानों में जावे तो भी और उपाय कल्याण के निमित्त कोई नहीं। जैसे संकल्प का उपशम करना उपाय है तैसे जो अनादि, अविनाशी, अविकारी, परम पावन सुख है वह संकल्प के उपशम से पाता है। इससे यत्न से संकल्प को उपशम करो। जो कुछ भाव पदार्थ हैं वे सब संकल्परूपी तत्त्व से पिरोये हुए हैं। जब संकल्परूपी ताँत टूटता है तब नहीं जाना जाता कि पदार्थ कहाँ गये। सत्य असत्य सब पदार्थ संकल्पमात्र हैं। जब तक संकल्प है तब तक ये भासते हैं और संकल्प के निवृत्त हुए असत्य हो जाते हैं। संकल्प से जैसी चिन्तना करता है क्षण में तैसे ही हो जाता है। संसारभ्रम संकल्प से उदय हुआ है और संकल्प निवृत्त किये से चित्त अद्वैत के सम्मुख होता है। सर्वजगत् असत्यरुप है और माया से रचा है, जब संकल्प को त्यागकर यथा प्राप्ति में विचरेगा तब तुझको खेद कुछ न होगा। असत्यरूप जगत् के कार्य में दुःखित होना व्यर्थ है, जब संयुक्त जगत को असत्य जानोगे तब दुःखी भी न होगे। जब तक जगत् का सद्भाव होता है तब तक दुःख होता है और जब असत्य जाना तब दुःख भी नहीं रहता। बोधवान् को कोई दुःख भी नहीं भासता, इससे जो नित्य प्राप्त सत्तारूप है

उसमें स्थित होकर विकल्प के बड़े समूहों को त्याग करो और अद्वैत आत्मा में विश्राम सुख को प्राप्त होकर सुषुप्तिरूप चित्तवृत्ति को धारके बिचरो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे संसारविचारो नाम द्विपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५२॥

अनुक्रम

दासुरोपाख्याने जगत्‌चिकित्सा वर्णन

इतना सुन पुत्र ने पूछा, हे भगवन्! संकल्प कैसा है और वह उत्पन्न, वृद्ध और नाश कैसे होता है? दासुर बोले, हे पुत्र! अनन्त जो आत्मतत्त्व है वह सत्ता समानरूप है जब वह चैतन्यसत्ता द्वैत के सम्मुख होती है तब चेतनता का लक्ष जो वृत्ति ज्ञानरूप है वही बीजरुप संवित् उल्लासमात्र सत्ता को प्राप्त होता है, फुरने से आकाश को चेत ता है और आकाश को पूर्ण करता है । जैसे जल से मेघ होता है वैसा ही फुरने की दृढ़ता से आकाश होता है । अपना स्वरूप आत्मसत्ता से भिन्न भासता है–यह भावना चित्त में भावित हो जाती है । जैसे बीज अंकुरभाव को प्राप्त होता है तैसे ही सत्संवित् संकल्पभाव को प्राप्त होता है । संकल्प से ही संकल्प उपजता है और आप ही बढ़ता है जिससे सुखी दुःखी होता है । तब अचलरूप में चित्त संवेदन दृश्य की ओर फुरता है तब उस फुरने का नाम संकल्प होता है और स्वरूप से भूलकर जब दृश्य की ओर फुरता है तब संकल्प वृद्ध होता है और जगत् जाल रचता है । जो कुछ प्रपञ्च है वह संकल्प का रचा संकल्पमात्र है जैसे समुद्र जल मात्र होता है, जल से भिन्न नहीं, तैसे ही जगत् भी संकल्प से भिन्न नहीं । आकाश मात्र से भ्रान्तिरूप जगत् फुर आया है–जैसे मृगतृष्णा का जल और आकाश में द्वितीय चन्द्रमा भासता है तैसे ही तुम्हारा उपजना और बढ़ना भ्रममात्र है । जैसे तम का चमत्कार होता है तैसे ही यह जगत् मिथ्या संकल्प से उदय हुआ तुझको भासता है । हे पुत्र! तेरा उपजना भी असत्य है और बढ़ना भी असत्य है, जब तू इस प्रकार जानेगा तब इसकी आस्था लीन हो जावेगी । 'यह पुरुष है' 'वह है', ' मैं हूँ' ये सब भाव दुःख सुख सहित पदार्थ अज्ञान से व्यर्थ भासते हैं । और इनमें आस्था करके हृदय से तपता रहता है । 'अहं', 'त्वम' आदिक दृश्य सब असत्यरूप हैं–जब यह भावना करेगा तब तू पृथ्वी में कल्याणरूप होकर बिचरेगा और फिर संसार को प्राप्त न होगा । 'अहं' 'त्वं' से आदि लेकर जब सब दृश्यकी भावना हृदय से जावेगी तब इसका अभाव हो जावेगा । हे पुत्र! फल को तोड़कर मर्दन करने में भी कुछ यत्न होता है परन्तु आप से सिद्ध और भावमात्र संकल्प के त्याग करने में कुछ यत्न नहीं, फूल के ग्रहण करने में भी यत्न है, क्योंकि हाथ का स्पन्द होता है पर इसमें जो कुछ भावरूप है वह है नहीं तो उसके त्यागने में क्या यत्न है?इससे कुछ हे नहीं, इस दृश्य प्रपञ्च से विपर्ययभाव करना कि 'न मैं हूँ' 'न जगत् है', जिस पुरुष ने इस दृश्य जगत् का सद्भाव, संकल्प नाश किया है वह शान्तिरूप होता है । यह संकल्प तो एक निमेष में लीला से जीत लेता है । भावरुप जो आत्मसत्ता है उसमें जब आप उपशम करे तब स्वस्थ होता है । जो शुद्ध मन से मन को छेदेगा वह आत्मतत्त्व में स्थित होगा, इसमें क्या यत्न है । संकल्प के उपशम हुए जगत् उपशम होता है और संसार के सब दुःख मूल से नाश हो जाते हैं । संकल्प, मन , बुद्धि, जीव, अहंकार आदिक जो सब नाम हैं ये भेद कहनेमात्र हैं, इनके अर्थ में कुछ भेद नहीं । जो कुछ दृश्य प्रपञ्चजाल है वह सब संकल्पमात्र है, संकल्प के अभाव हुए कुछ नहीं रहता । इससे संकल्प को हृदय से काटो–आकाशकी नाईं जगत् शून्य है, जैसे आकाश में नीलता भ्रान्ति से भासती है तैसे ही यह जगत् असत्य विकल्प से उठा है । संकल्प और जगत् दोनों असत्य हैं इससे सब असत्यरूप है । असत्यरूप संकल्प ने यह सब सिद्ध किया है इसकी भावना में आस्था करनी मिथ्या है । जब ऐसे जाना तब इष्टरूप किसको जाने, वासना किसकी करे और अनिष्ट किसको जाने, तब सब वासना नष्ट हो होती और वासना के नष्ट हुए सिद्धि प्राप्त होती है । हे पुत्र! जो यह जगत् सत्य होता तो विचार किये से भी दृष्टि आता सो तो विचार किये से इसका शेष कुछ नहीं रहता । जैसे प्रकाश के देखे से तम दृष्टि नहीं आता तैसे ही विचार कर देखे से जगत् सत्य नहीं भासता । इससे यह अविचार से सिद्ध है, असत्यरूप है । और बुद्धि की चपलता से भासता

है जिस पुरुष को जगत्भावना उठ गई है उसको जगत् के सुख दुःख स्पर्श नहीं करते । निर्णय से जो असत्यरूप जाना उसमें फिर आस्था नहीं उदय होती और जब आस्था गई तब भाव अभाव बुद्धि भी नहीं रहती । संसार के सुख सब मिथ्या मन के फुरने से रचे हैं और मनोराज के नगरवत् स्थित हुए हैं । भूत भविष्य, वर्त्तमान जगत् मन की वासना से फुरता है और मानसी शक्ति में स्थित है । वह मन क्षण में बड़ा दीर्घ आकार करता है और क्षण में ऐसा सूक्ष्म आकार धरता है कि ग्रहण करिये तो ग्रहण नहीं किया जाता । जैसे समुद्र की लहर को ग्रहण करिये तो पकड़ी नहीं जाती तैसे ही मन है ।यद्यपि बड़े आकार संयुक्त जगत् भासता है तो भी कुछ वस्तु नहीं है, क्षणभंगुर है और असार वासना से भासता है और वासना के क्षय हुए शान्त हो जाता है । जब तुझको वासना फुरे, तब उसी काल में उसको शीघ्र ही त्यागकर ऐसी भावना कर कि यह दृश्यप्रपञ्च कुछ है नहीं, असत्यरूप है तो वासना नष्ट हो जावेगी–इसमें कुछ संदेह नहीं । जो यह जगत् हो तो इसको त्याग करने में यत्न भी हो पर यह तो असत्य भूतों का प्रपञ्च है इसके अर्थ चिकित्सा करने में तुझको खेद कुछ न होगा जो है ही नहीं तो उसके त्याग में क्या यत्न है? यदि यह संसार सत्य होता तो इसके नाश निमित्त कोई न प्रवर्त्तता, पर यह तो सब असत्यरूप है और विचार किये से कुछ नहीं पाया जाता । इससे असत्य अहंकाररूप दृश्य को त्यागकर सत्य आत्मा को अंगीकार करो । जैसे धान से भूसी निकालकर चाँवल को अंगीकार करते हैं तैसे ही यत्न करके सर्वदृश्य को त्यागके आत्मपद को प्राप्त हो । यह परम पुरुषार्थ है और क्रिया किस निमित्त करता है? मलरूप संसार का नाशकर और युक्ति करके जान कि संसार असत्य कृत्रिमरूप है तो उसके नाश में क्या यत्न है? जैसे ताँबे से युक्ति पूर्वक मल दूर होता है तब निर्मल भासता है, तैसे ही युक्ति से दृश्य मल जब दूर हो तब बोधस्वरूप प्राप्त हो, इस कारण उद्यमवान् हो । हे पुत्र! यह संसार संकल्प विकल्प से उत्पन्न हुआ है और विचारकर अल्पयत्न से ही निवृत्त हो जाता है । देख कि वह कौन है जो सदा स्थिर रहता है? सब पदार्थ असत्यरूप हैं और देखते देखते नष्ट हो जाते हैं–जैसे दीपक के प्रकाश से अन्धकार का अभाव हो जाता है और भ्रान्ति दृष्टि से आकाश में दूसरा चन्द्रमा भासता है और स्वच्छ दृष्टि से अभाव हो जाता है तैसे ही विचार के जगत्भ्रम नष्ट होता है । न यह जगत् तेरा है न तू इसका है ,यह केवल भ्रम से भासता है इससे भ्रम को त्यागकर देख कि असत्यरूप है । अपनी गुरुत्वता का बड़ा ऐश्वर्य है सो तेरे हृदय में मत हो । यह मिथ्या भ्रमरूप है हृदय से उठे तो आपको और जगत् को भी असत्य जान । आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं । जब ऐसे निश्चय करेगा तब जगत् भावना नष्ट हो जावेगी और सर्वात्मा हो भासेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्याने जगत्चिकित्सा वर्णनन्नाम त्रिपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५३॥

अनुक्रम

दासुरोपाख्यानसमाप्ति

वशिष्टजी बोले, हे रघुकुलरूपी आकाश के चन्द्रमा रामजी! जब इस प्रकार दासुर ने पुत्र को उपदेश किया तब मैं उसके पीछे आकाश में स्थित था सो कदम्बवृक्ष के अग्रभाग में जा स्थित हुआ– जैसे मेघ वर्षा से रहित तूष्णीम होकर पर्वत के शिखर परजा स्थित होता है तैसे ही मैं भी जा स्थित हुआ । दासुर शूरमा ने जो अज्ञानरूपी शत्रु का नाश कर्ता और परम शक्ति से प्रकाशमान था, तप से उसकी देह ऐसी हो गई थी मानो सुवर्ण का चमत्कार है, मुझको अपने आगे देखा कि वसिष्ठ मुनि आये हैं । ऐसे जाकर उसने उठके अर्ध्य पाद्य से पूजन किया और फिर हम दोनों वृक्ष के पत्र पर बैठ गये । उसने फिर पूजन किया और जब पूजन कर चुका तब हम दोनों कथा का प्रसंग चलाने लगे और उस चर्चा से उसके पुत्र को संसारसमुद्र के पार करने के निमित्त जगाया । फिर मैंने वृक्ष की ओर देखा जो महासुन्दर फूलों और फलों से शोभायमान था और दासुर की इच्छा द्वारा मृग और पक्षी उसके आश्रय रहते थे । उसके पुत्र को हमने विज्ञान दृष्टि से रमणीय दृष्टान्त और युक्ति सहित उपदेश किया और नाना प्रकार के विचित्र इतिहासों से उस बालक को जगाया । रात्रि को हम सिद्धान्त कथा में लगे रहे और हमको एक मुहुर्त्त वत् रात्रि व्यतीत हुई, जब प्रातःकाल हुआ तब मैं उठ खड़ा हुआ और दासुर अपने पुत्र संयुक्त मेरे साथ चला । जहाँ तक कदम्ब का आकाशतल था वहाँ तक वे मेरे संग आये, पर मैंने बहुत करके उनको ठहराया और मैं गंगाजी की ओर चला और स्नान करके सप्तर्षि के मण्डल में जाय स्थित हुआ । हे रघुनन्दन! यह दासुर का आख्यान मैंने तुमसे कहा है । यह जगत् प्रतिबिम्ब आकाश के सदृश है, प्रत्यक्ष भासता है तो भी असत्यरूप है । जगत् के निरूपण निमित्त मैंने यह आख्यान तुमको सुनाया है । यह जगत् असत्‌रूप है, कुछ वस्तु नहीं बुद्धि से तुम इसमें राग मत करो । जब इस कथा का सिद्धान्त हृदय में धारण करके विचारोगे तब संसाररूपी मल तुमको स्पर्श न करेगा ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे दासुरोपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुष्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५४॥

अनुक्रम

कर्तव्यविचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! 'यह प्रपञ्च है ही नहीं' ऐसे जान के सब पदार्थों से निराग हो जो वस्तु है ही नहीं उसकी आस्था करनी क्या? इस प्रपञ्च के भासने न भासने से तुमको क्या है? तुम निर्विघ्न होकर आत्मतत्त्व में स्थित हो और ऐसे जानो कि जगत है भी और नहीं भी है । इस निश्चय से भी तुम असंग हो जाओ । इस चल अचल दृष्टि आने में तुमको क्या खेद है? हे रामजी! यह जगत् न आदि है, न अनादि है, केवल स्वेतथ का जो चित्त संवित् मनरूप था उसके फुरने से इस प्रकार भासता है, वास्तव में कुछ नहीं । यह जगत् किसी कर्त्ता ने नहीं किया और न किसी अकर्त्ता ने किया है केवल आभास रूप है और आभास में कर्त्ता अकर्त्ता पद को प्राप्त हुआ है पर अकृत्रिमरूप है और किसी का किया नहीं इससे तुमको इससे सम्बन्ध न हो । यह भावना हृदय में धारो कि कुछ नहीं है, क्योंकि किसी कर्त्ता से नहीं उत्पन्न हुआ, आत्मा सर्व इन्द्रियों से अतीत जड़ की नाईं, अकर्त्तारुप है उसको कर्त्ता कैसे कहिये । यह कहना नहीं बनता । यह जो जगत्जाल अकस्मात फुर आया है सो आभासरूप है उसमें आसक्त होना क्या है? यह असत् भ्रान्तिरूप है इसमें आस्था मूढ़ बालक करते हैं, बुद्धिमान् नहीं करते । स्वरूप में जगत् उपजा नहीं और नाश भी नहीं होता, निरन्तर दृष्टि में आता है और अज्ञान से बार म्बार भावना होती है तो भी कुछ है नहीं असत्रूप है और निरन्तर प्रत्यक्ष नष्ट होता जाता है । तुम विचार करके देखो कि अवस्था और स्थान कहाँ जाते हैं और कहाँ गये हैं? इससे तुम सब इन्द्रियों से अतीत जो आत्मतत्त्व अकर्तारूप है उसमें स्थित होकर विगत ज्वर हो जाओ । वास्तव में जगत् कुछ बना नहीं पर आत्मसत्ता में बना भासता है । तुम सत्ता में नित्य दृढ़ हो जाओ । जैसे हुआ है, तैसे है; भाव अभाव दुःखदशा है । आदर्श रूपी आभास में दीर्घरूप दृश्य स्थित हुआ जैसे हुआ है तैसे ही है, विपर्यय नहीं होता हे रामजी! दृश्य धर्म में अपराजितकाल है सो अनन्त है, दृश्य पदार्थ का कुछ अन्त नहीं । जो आत्मविचार से देखिये तो स्वप्नवत् है कुछ है नहीं जो वास्तव में ऐसे हो तो उसमें आस्था करके यत्न करना व्यर्थ है । जगत् के पदार्थ नाशरूप हैं इनमें आस्था नहीं बनती, क्योंकि आत्मा सत् है और जगत् असत् है इससे अन्योन्य विलक्षण स्वभाव है–जड़ और चैतन्य का संयोग कुछ नहीं बनता । जगत् के पदार्थ आदि स्थिर मानिये तो नहीं रहते, इस कारण आस्था शोभा नहीं पाती । जैसे जल के तरंग का आश्रयलेकर कोई पार हुआ चाहे तो दुःख पाता है, तैसे ही जगत् के पदार्थों का आश्रय करने से जीव दुःखी होता है । जगत् की आस्था करना ही बन्धन है और नाशरूप है । तुम स्थिररूप हो इससे आस्था नहीं सम्भवती । कभी जल के तरंग और पर्वत का सम्बन्ध हुआ है? जो तुमने जगत् को असत्य और आपको सत्य जाना तो भी जगत् के पदार्थों की वाच्छा नहीं बनती क्योंकि सत्य को असत्य की वाच्छा नहीं हो सकती और असत्य की असत्य में भावना करनी क्या है? जो आप संयुक्त जगत् सत्य जानते हो तो भी वाञ्छा नहीं हो सकती क्योंकि सत्य अद्वैत आत्मा है उसके समीप कुछ द्वैत वस्तु नहीं तुम तो एक अद्वैत हो, वाञ्छा किसकी करते हो? इससे तुमको किसी पदार्थ की इच्छा अनिच्छा नहीं बनती । हेयोपादेय से रहित केवल स्वस्थ होकर अपने आड़में स्थित हो जाओ । वह आत्मतत्त्व हे जो सबका कर्ता और सर्वदा अकर्त्ता है कदाचित कुछ नहीं करता और उदासीन की नाईं स्थित है । जैसे दीपक सब पदार्थों को प्रकाश करता है और किसी की इच्छा अपने अर्थ सिद्ध करने के निमित्त नहीं करता–स्वाभाविक ही प्रकाशरूप है, तैसे ही आत्मतत्त्व सबका कर्त्ता है और उसका कर्त्ता कोई नहीं । जैसे सूर्य सबकी क्रिया को सिद्ध करता है और आप किसी क्रिया का आश्रय नहीं, क्योंकि आप ही प्रकाशरूप है, चलता है और कदाचित् चलायमान नहीं होता और जो सूर्य का प्रतिबिम्ब चलता भासता है सो

प्रतिबिम्ब का चलना सूर्य में नहीं है, तैसे ही तुम्हारा स्वरूप आत्मा सदा अकर्त्ता अचल है उसमें स्थिर हो । जितना कुछ जगत् भासता है उसमें विचरो परन्तु सद्भावना करके उसमें बन्ध्यायमान मत हो, यह असत्‌रूप है । हे रामजी! यद्यपि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से जगत् सत् भासता है तो भी है नहीं । स्वतः चित्त होकर आपको विचारो और आप में स्थित हो तब जगत् कुछ न भासेगा । जो प्रत्यक्ष बड़े तेज, बल और वीर्य से सम्पन्न भासता है यदि अन्तर्धान हो गया तो सत्य कैसे कहिये? इस विचार से भी तुमको जगत् की भावना नहीं बनती । जैसे चक्र पर आरूढ़ होने से सब स्थान भ्रमते दृष्टि आते हैं और स्वप्ननगर भ्रम से भासता है सो किसी कारणसे नहीं होता–आभासरूप मन के फुरने से उपज आता है । जैसे कोई जीव अकस्मात् आ निकलता है तो वह मित्रता का भागी नहीं होता और विचार किये बिना बुद्धिमान् उसमें रुचि नहीं करते, न वह सुहृदता का पात्र होता है, तैसे ही भ्रम से जो जगत् भासा है वह आस्था करके भावना बाँधने योग्य नहीं । जैसे चन्द्रमा में उष्णता, सूर्य में शीत लता और मृगतृष्णा की नदी में जल की भावना करनी अयोग्य है तैसे ही जगत् में सत्य भावना अयोग्य है । यह संकल्पपुर, स्वप्ननगर, द्वितीय चन्द्रमावत् असत्य है, भ्रम करके सत्य भासता है । हे रामजी! हृदय से भाव पदार्थ की आस्था लक्ष्मी को त्याग करो और बाहर लीला करते विचरो पर हृदय से अकर्त्ता पद में स्थित रहो और सब भाव पदार्थों में स्थित पर सबसे अतीत रहो । आत्मा सब पदार्थों में सर्वदाकाल स्थित है और सबसे अतीत है, उसकी सत्ता से जगत् नीति में स्थित है । जैसे दीपक से सब पदार्थ प्रकाश वान् होते हैं पर दीपक इच्छा से रहित प्रकाशता है–उससे सबकी क्रिया सिद्ध होती है और जैसे सूर्य आकाश में उदय होता है और उसके प्रकाश से जगत् का व्यवहार होता है, तैसे ही अनिच्छित आत्मा की प्रकाशसत्ता से सब जगत् प्रकाशता है । जैसे इच्छा से रहित रत्न का प्रकाश होता है और स्थान में फैल जाता है, तैसे ही आत्मदेव की सत्ता से जगत्‌गण प्रवर्त्तते हैं ।वह कर्त्ता है पर सब इन्द्रियों के विषय से अतीत है इस कारण अकर्त्ता अभोक्ता है, सब इन्द्रियों के अन्तर्गत स्थित है इस कारण कर्त्ता भोक्ता वही है । इस प्रकार दोनों आत्मा में बनते हैं–कर्त्ता भोक्ता हो सकता है और अकर्त्ता अभोक्ता भी है, जिसमें तुम अपना कल्याण जानों उसमें स्थित हो जाओ । हे राम जी! इस प्रकार निश्चय करो कि सब मैं ही हूँ और अकर्त्ता–अभोक्ता हूँ । ऐसी दृढ़ भावना से जगत् के कार्य को करते भी कुछ बन्धन न होगा और आत्मा कर्तव्य भोक्तव्य से रहित है, इस प्रकार निश्चय करने से भोग की वासना निवृत्त हो जावेगी तब भोग की ओर फिर न चित्त आवेगा । जिसको यह निश्चय है कि मैंने कदाचित् कुछ किया नहीं और सदा अक्रियरूप हूँ, वह भोग के समूहों की कामना किस निमित्त करेगा और त्याग किसका करेगा? इससे तुम यही निश्चय धरो कि मैं नित्य अकर्त्तारूप हूँ । जब यह बुद्धि दृढ़ होगी तब परम अमृतरूप समानसत्ता शेष रहेगी । अथवा यही निश्चय धरो कि सबका कर्त्ता मैं ही हूँ, मैं महाकर्त्ता हूँ और सबके हृदय में स्थित होकर सब कार्य करता हूँ । हे रामजी! यह दोनों निश्चय तुमको कहे हैं जिसमें तुम्हारी इच्छा हो उसमें स्थित हो । जहाँ यह निश्चय होता है कि सबका कर्त्ता मैं हूँ और सब जगत्‌भ्रम भी मैं हूँ तब इन पदार्थों के भाव अभाव में रागद्वेष न होगा । जो सब आप ही हुआ तो रागदेष किसका करे? उसको यह निश्चय होता है कि यह शरीर मेरा दग्ध होता है, वह शरीर सुगन्धादिक से लीला करता है उसको खेद और उल्लास किसका हो । इससे तुमको जगत् के क्षोभ, उल्लास, उदय, अस्त में सुख–दुख न होगा सबका कर्ता मैं हूँ तो खेद उल्लास भी मैं करता हूँ और जब आत्मा और कर्तव्य की एकता हुई तब खेद उल्लास सब आप ही लय हो जाता है और सत्ता समान शेष रहता है । वही सत्ता भाव पदार्थ में अनु स्युत होकर स्थित है और उसमें जब चित्त स्थित होता है तब फिर दुःख नहीं पाता । हे रामजी! सबका कर्त्ता आपको जानो कि कर्त्ता पुरुष मैं हूँ व अकर्ता जानो कि मैं कुछ नहीं करता अथवा दोनों निश्चय

त्यागकर निस्संकल्प निर्मन हो जाओ तो तुम्हारा जो स्वरूप है वही सत्ता शेष रहेगी यह जगत् है, यह मैं हूँ, यह मेरा है, इस कुत्सित भावना को त्याग करो । इस अभिमान में स्थित न होना, इस देह में अहंकार कालसूत्र नाम करके नरक की प्राप्त का कारण है, नरक का जाल है शस्त्र की वर्षा होती है, इससे देहाभिमान दुःखों का कारण है अर्थात् अनन्त दुःखदायक है इससे पुरुष प्रयत्न करके इस का त्याग करो, यह सबको नाश करता है । भावी कल्याण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे इससे स्पर्श नहीं करते– जैसे चाण्डाली की गोद में स्वान् का माँस हो तो उसके साथ श्रेष्ठ पुरुष संग नहीं करते तैसे ही देहाभिमान से स्पर्श न करना–यह महानीच है । यह अहंकाररूपी बादल नेत्रों के आगे पटल है इससे आत्मा नहीं भासता । जब विचार करके इस पटल को दूर करोगे तब आत्मसत्ता का प्रकाश उदय होगा । जैसे मेघघटा के दूर होने से चन्द्रमा प्रकाशित होता है तैसे ही अहंकार के अभाव से आत्मा प्रकाशता है । जब तुम इन निश्चयों में कोई निश्चय धारोगे तब सब दुःखों से रहित शान्तपद को प्राप्त होगे । यह निर्णय सबसे उत्तम है और उत्तम पुरुष इस निश्चय में सदा स्थित है । अब तुम भी विधि अथवा निषेध दोनों में कोई निश्चय धारण करो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थिति प्रकरणे कर्तव्यविचारो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५५॥

अनुक्रम

पूर्णस्वरूपवर्णन

रामजी ने पूछा, हे ब्रह्मन्! जो कुछ तुमने सुन्दर वचन कहे हैं वह सत्य हैं । अकर्त्तारूप, आत्मा, कर्त्ता, अभोक्ता, सबका भोक्ता, भूतों को धारनेवाला, सबका आश्रयभूत और सर्वगत व्यापक, चिन्मात्र, निर्मलपद, अनुभवरूप देव सर्वभूतों के भीतर स्थित है । हे प्रभो! ऐसा जो ब्रह्मतत्त्व है वह मेरे हृदय में रम रहा और आपके वचनों से प्रकाशने लगा है । आपकेवचन शीतल और शान्तरूप हैं, तप्तता मिटाते हैं और जैसे वर्षा से पृथ्वी शीतल होती है तैसे ही मेरा हृदय शीतल हुआ है । आत्मा उदा सीन की नाईं अनिच्छित स्थिति है कर्तव्य–भोक्तव्य से रहित है, सब जगत् को प्रकाशता है और सब क्रिया उससे सिद्ध होती हैं । इस कारण कर्त्ता भी वही है और भोक्ता भी वही है । परन्तु मुझको कुछ संशय है उसको अपनी वाणी से निवृत्त करो । जैसे चन्द्रमा का प्रकाश तम को नाश करता है तैसे ही आप मेरे संशय को दूर करो । यह सत्य है, यह असत्य है, यह मैं हूँ वह और है इत्यादिक द्वैतकल्पना एक अद्वैत विस्तृत शान्तरूप में कहाँ से स्थित हुई? निर्मल में मल कैसे हुआ है? वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! इस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैं सिद्धान्तकाल में कहूँगा अथवा तुम आप ही जान लोगे । इस मोक्ष उपाय शास्त्र का सिद्धान्तकाल में कहूँगा जब भली प्रकार तुम्हारे हृदय में स्थित होगा तब तुम इस प्रश्न के पात्र होगे । अन्यथा योग्य न होगे–उस अवस्था में अन्यथा प्राप्त नहीं होते । हे रामजी! जैसे सुन्दर स्त्रियों की सुन्दर वाणी से सुन्दर गीत होता है और उसके अधिकारी यौवनवान् पुरुष होते हैं तैसे ही सिद्धान्त अवस्था में मेरे वचन के तुम अधिकारी होगे । जैसे रागमयी कथा बालक के आगे कहनी व्यर्थ होती है तैसे ही बोध समय बिना उदार कथा कहनी व्यर्थ होती है । जैसे शरत्काल में वृक्ष पत्रसंयुक्त और वसंत ऋतु में पुष्प से शोभता है तैसे ही जैसी अवस्था पुरुष की होती है तैसा ही उपदेश कहना शोभता है और उपदेश भी तब दृढ़ लगता है जब बुद्धि शुद्ध होती है–मलीन बुद्धि में दृढ़ नहीं होता । जैसे निर्मल वस्त्र पर केसर का रंग शीघ्र ही चढ़ जाता है और मलीन वस्त्र पर नहीं चढ़ता, तैसे ही प्राप्तरूप जो आत्मा है उसका विज्ञान उपदेश सिद्धान्त अवस्था वाले को लगता है जिसको बोधसत्ता प्राप्त होती है । तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मैंने संक्षेपमात्र कहा भी है–विस्तार से नहीं कहा पर जो तुम नहीं जानते तो भी प्रत्यक्ष है । जब तुम आपसे आपको प्राप्त होगे तब आपही इस प्रश्न के उत्तर को जान लोगे– इसमें कुछ संदेह नहीं । सिद्धान्तकाल में जब तुम बोध को प्राप्त होकर स्थित होगे तब मैं भी इस प्रश्न का उत्तर विस्तारसे कहूँगा । जब आपसे अपना आप निर्मल करोगे तब अपने आपको जान लोगे । हे रामजी! कर्त्ता और कर्म का विचार जो मैंने तुमको कहा है उसको विचार कर वासना का त्याग करो । जब तक संसार की वासना इस हृदय में होती है तब तक बन्धवान् है और जब वासना दूर होती है तब मुक्त होता है, इससे तुम वासना को त्यागो और मोक्ष के अर्थ जो वासना है उसका भी त्याग करो तब सुखी होगे । इस क्रम से वासना को त्यागकर प्रथम शास्त्रविरुद्ध तामसी वासना का त्याग करो, फिर विषयकी वासना का त्याग करो और मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा इस निर्मल वासना को अंगीकार करो । मैत्री के अर्थ यह हैं कि सबमें ब्रह्मभाव जानना, द्रोह किसी का न करना । दुःखी पर दया करनी करुणा कहलाती है, धर्मात्मा पुरुष को देखके प्रसन्न होने का नाम मुदिता है और पापी को देखके उदासीन रहना और निन्दा न करना उपेक्षा कहलाती है । इन चारों प्रकार की वासनाओं से संपन्न हो हृदय से इनका भी त्याग करके इनका अभिमान न रखना चाहिये यदि बाहर से इनका व्यवहार हो पर हृदय से दुर्वासना त्यागकर चिन्मात्र वासना रखनी चाहिये और पीछे इसको भी मन बुद्धि के साथ मिश्रित त्याग करना तब जिससे वासना त्यागी हैं वह शेष रहेगा तो उसको भी त्याग करना । हे रामजी! चिन्मात्रतत्त्व से कल्पना करके

देह, इन्द्रियाँ, प्राण, तम, प्रकाश, वासनादिक भ्रममात्र भासि आये हैं । जब मल अर्थात् अहंकार संयुक्त इनको त्याग करोगे तब आकाशवत् सम स्वच्छ होगे । इस प्रकार सबको त्यागकर पीछे जो तुम्हारा स्वरूप है वह प्रत्यक्ष होगा जो हृदय से इस प्रकार त्यागकर स्थित होता है वह पुरुष मुक्तिरूप परमेश्वर होता है, चाहे वह समाधि में रहे, अथवा कर्म करे वा न करे । जिससे हृदय से सब अर्थों की आस्था नष्ट हुई है वह मुक्त और उत्तम उदारचित्त है । उसका करने, न करने में कुछ हानि–लाभ नहीं और न समाधि करने में अर्थ है तप से है, क्योंकि उनका मन वासना से रहित हुआ है । हे रामजी! मैंने चिरकाल पर्यन्त अनेक शास्त्र विचारे हैं और उत्तम उत्तम पुरुषों से चर्चा की है परन्तु परस्पर यही निश्चय किया है कि भली प्रकार वासना का त्याग करे इससे उत्तम और पद पाने योग्य नहीं । जो कुछ देखने योग्य है वह मैंने सब देखा है और दशों दिशाओं मैं भ्रमा हूँ, कई जन यथार्थदर्शी दृष्टि आये हैं और कितने हेयोपादेय संयुक्त देखे पर यही यत्न करते हैं और इससे भिन्न कुछ नहीं करते । सब ब्रह्माण्ड का राज करे अथवा अग्नि और जल में प्रवेश करे पर ऐसे ऐश्वर्य से संपन्न होकर भी आत्मलाभ बिना शान्ति नहीं प्राप्त होती । बड़े बुद्धिमान और शान्त भी वही हैं जिन्होंने अपनी इन्द्रियरूपी शत्रु जीते हैं और वही शूरमें हैं उनको जरा, और मृत्यु का अभाव है––वह पुरुषउपासना करने योग्य है । हे रामजी! ज्ञानवान् को किसी दृश्य पदार्थ में प्रीति नहीं होती, क्योंकि पृथ्वी आदिक पञ्चभूत ही सब ठौर मिलते हैं––त्रिलोकी में इनसे भिन्न और कोई पदार्थ नहीं तो प्रीति किस विधि हो । युक्ति से ज्ञानवान् संसार समुद्र को गोपदवत् तर जाते हैं पर जिन्होंने युक्ति का त्याग किया है उनको सप्तसमुद्र की नाईं संसार हो जाता है । जो पुरुष उदारचित्त हैं उनको यह सम्पूर्ण जगत् कदम्ब स्वप्न के वृक्षवत् हो जाता है, उसमें वे त्याग किसका करें और भोग किसका करें । हेयोपादेय से रहित पुरुष को जगत् तुच्छ सा भासता है इस कारण जगत् के पदार्थों के निमित्त वह यत्न नहीं करता और जो दुर्बुद्धि जीव होते हैं वे तुच्छ ब्रह्माण्डरूप पृथ्वी पर युद्ध करते हैं, अनेक जीवों का घात करते हैं और ममता में बन्धायमान हैं यह जगत् संकल्पमात्र में नष्ट हो जाता है क्षण क्षण में आस्था से यत्न करना बड़ी मूढ़ता है । सब जगत् आत्मा के एक अंश से कल्पित है, इसकी उपमा तृण समान भी नहीं । इस प्रकार तुच्छरूप त्रिलोकी जो जानकर आत्मवेत्ता किसी पदार्थ के हर्ष शोक में बन्धायमान नहीं होते और ग्रह्ण और त्याग से रहित हैं । सदाशिव के लोक आदि पाताल पर्यन्त जल, रस, देह, राजस, सात्त्विक तामस संयुक्त जगत् केपदार्थ ज्ञानवान् को प्रसन्न नहीं कर सकते और उसकी इच्छा किसी में नहीं होती, क्योंकि वह तो एक अद्वितीयात्मभाव को प्राप्त हुआ है, आकाशवत् व्या पक उसकी बुद्धि होती है, अपने आप में स्थित है चित्त दृश्य से रहित, अचेतन चिन्मात्र है । शरीररूपी जाल जो भयानक कुहिरा है और जिससे जगत् धूसर हो रहा है सो तिस पुरुष का शान्त हो जाता है और द्वितीय वस्तु का अभाव होता है ब्रह्मरूपी बड़ा समुद्र है उसके झागवत् कुलाचल पर्वत है, चेतनरूपी सूर्य में मृगतृष्णा की नदी रूपी जगत् की लक्ष्मी है और ब्रह्मरूपी समुद्र में जगत्रूपी तरंग उठते और लय होते हैं, ऐसे जाननेवाला जो ज्ञानवान् है उसको यह जगत् आनन्ददायक कैसे हो? सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि जो तुमको प्रकाशरूपी भासते हैं वे भी घट काष्ठ आदिकवत् जड़रूप हैं और जिससे यह प्रकाशते हैं वह सबको सिद्धकर्त्ता आत्मसत्ता है और कोई नहीं । देह जो रुधिर, माँस और अस्थि से बनी है और इन्द्रियों से वेष्टित है उस देह रूपी डब्बे में चेतन जीवरूपी रत्न विराजता है, चेतन बिना जड़ मुग्धरूप है । हे रामजी! यह जो स्त्री की देह भासती है सो चर्म की पुतली बनी है, उसको देखके मूढ़ प्रसन्न होता है । जैसे वायु के चलने से पर्वत चलायमान नहीं होता तैसे ही ज्ञानवान् संसार के पदार्थों से प्रसन्न नहीं होता । ज्ञानवान् उस उत्तम पद में विराजता है जिसकी अपेक्षा से चन्द्रमा और सूर्य पाताल में भासते हैं अर्थात् इनका बड़ा प्रकाश भी तुच्छ भासता है

ज्ञानवान् परम उत्तम पद में विराजते हैं । ये संसारी मूढ़ जीव संसारसमुद्र में सर्प की नाईं बहे जाते हैं । जैसे ये हमको भासते हैं तैसे कहते हैं । इस जगत् में ऐसा भावपदार्थ कोई नहीं जो ज्ञानवान् को राग से रञ्जित करे । जैसे राजा के गृह में महा सुन्दर विचित्र रूप रानियाँ हों तो उनके ग्राम की मूढ़ नीच स्त्रियाँ प्रसन्न नहीं कर सकतीं तैसे– ही ये जगत् के भावपदार्थ तत्त्ववेत्ता को प्रसन्न नहीं कर सकते और उसके चित्त में प्रवेश नहीं करते । जैसे आकाश में मेघ रहते हैं परन्तु आकाश को स्पर्श नहीं कर सकते तैसे ही वे निर्लेप रहते हैं । जैसे सदाशिव महासुन्दर गौरी के नृत्य देखनेवाले और गौरीसंयुक्त हैं उनको वानरी का नृत्य हर्षदायक नहीं होता, तैसे ही ज्ञानवान् को जगत पदार्थ हर्षदायक नहीं होते । जैसे जल से पूर्ण कुंभ में रत्न का प्रतिबिम्ब देखके बुद्धिमान् का चित्त उसे ग्रहण नहीं करता तैसे ही ज्ञानवान् का चित्त जगत् के पदार्थों को नहीं चाहता । यह संसारचक्र जो बड़ा विस्ताररूप भासता है सो असत्यरूप है, उसको देखके ज्ञानवान् कैसे इच्छा करे, क्योंकि यह तो चन्द्रमा के प्रतिबिम्बवत् है । शरीर भी असत्य है, इसकी इच्छा मूढ़ करते हैं–जैसे सेवार को मच्छ भोजन करते हैं और राजहंस नहीं करते तैसे ही वे संसार के विषयों की इच्छा करते हैं–ज्ञानी नहीं करते ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे पूर्णस्वरूपवर्णनन्नाम षट्पञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५६॥

अनुक्रम

कचगाथावर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! यह सिद्धान्त जो परम उचित वस्तु है उसकी गाथा बृहस्पति के पुत्र कच ने गाई थी–वह परम पावनरूप है । एक काल में सुमेरु पर्वत के किसी गहन स्थान में देवगुरु का पुत्र कच जा बैठा । अभ्यास के वश से कदाचित् उसको आत्मतत्त्व में विश्रान्ति हुई, उसका अन्तःकरण सम्यक ज्ञानरूपी अमृत से पूर्ण हुआ, पाञ्चभौतिक जो मलीन दृश्य हैं उनसे विरक्त हुआ और ब्रह्मभाव अस्फुट होकर रमने लगा । तब उसे ऐसा भासा कि निराभाश आत्मतत्त्व से कुछ भिन्न नहीं–एक अद्वैत ही है, ऐसे देखता हुआ गद्गद वाणी से बोला कि मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, क्या ग्रहण करूँ और किसका त्याग करूँ सब विश्व एक आत्मा से पूर्ण हो रहा है? जैसे महाकल्प में सब ओर से जल पूर्ण हो जाता है तैसे ही दुःख भी आत्मा है सुख भी आत्मा है और आकाश, दशोदिशा और 'अहं' 'त्वं' आदि सब जगत् आत्मा ही है । बड़ा कष्ट है कि मैं अपने आपमें नष्ट हुआ बन्धवान् था । देह के भीतर–बाहर, अधः ऊर्ध्व, यहाँ–वहाँ सब आत्मा ही है, आत्मा से कुछ भिन्न नहीं । सब एक ओर से एक आत्मा ही स्थित है, और सब आत्मा में स्थित है यह सब मैं हूँ और अपने आप में स्थित हूँ । अपने आपमें नहीं समाता अर्थात् आदि अन्त से रहित अनन्त आत्मा हूँ । अग्नि, वायु, आकाश, जल, पृथ्वी मैं ही हूँ, जो पदार्थ मैं नहीं वह है ही नहीं और जो कुछ है वह सब विस्तृतरूप मैं ही हूँ । एक पूर्ण परम आकाश भैरव अर्थात् भर रहा हूँ, सब जगत् भी अज्ञानरूप है और समुद्रवत् एक पूर्ण आत्मा स्थित है । वह कल्याणमूर्ति इस प्रकार भावना करता हुआ स्वर्ण के पर्वत के कुञ्ज में स्थित हुआ और ओंकार का उच्चार बड़े स्वर से करने लगा । ओंकार की जो अर्ध कला है, जिसको अर्द्धमात्रा भी कहते हैं, वह फूल से भी कोमल है उसमें वह स्थित हुआ । वह अर्द्धमात्रा कैसी है कि न अन्तःस्थित है और न बाहर है, हृदय में भावना करता हुआ उसमें स्थित हुआ और कलनारूपी जो मल था उससे रहित होकर निर्मल हुआ और उसकी चित्त की वृत्ति निरन्तर लीन हो गई । जैसे मेघ के नष्ट हुए शरत्काल का आकाश निर्मल होता है, तैसे ही कलंकित कलना के दूर हुए से वह निर्मल हुआ । जैसे पर्वत की पुतली अचलरूप होती है तैसे ही कच समाधि में स्थित अचल हुआ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कचगाथावर्णनन्नाम सप्तपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५७॥

अनुक्रम

कमलजाव्यवहार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! अंगनाओं के शरीरादिक भोग और जगत् के पदार्थों में कुछ सुख नहीं । ज्ञानवानों को ये पदार्थ तुच्छ भासते हैं, इसमें आस्था नहीं करते तो फिर किस पदार्थ की इच्छा करें । इन भोग ऐश्वर्य पदार्थों से मूढ़ असाधु संतोष पाते हैं पर जो ज्ञान वान् साधु हैं वे इनमें प्रीति नहीं करते जो कृपण अज्ञानी हैं उनको भोग ही सरस है पर भोग आदि, अन्त और मध्य में दुःखरूप है । जो पुरुष इनमें आस्था करते हैं वे गर्दभ और नीच पशु हैं । हे रामजी! स्त्री रक्त, माँस और अस्थि आदि से पूर्ण है, जो इसको पाकर संतुष्ट होते हैं वे सियार हैं– मनुष्य नहीं । जो ज्ञानवान् हैं, वे जगत् के पदार्थों में प्रीति नहीं करते । पृथ्वी सर्व मृत्तिका, वृक्ष काष्ठ, देह माँस और पर्वत पाषाणरूप हैं । पाताल अधः है और आकाश ऊर्ध्व है सो दिशाओं से व्यापा है सर्वविश्व पाञ्चभौतिकरूप है इसमें तो अपूर्व सुख कोई नहीं जिसमें ज्ञानवान् प्रीति करें । इन्द्रियों के पञ्चविषय मोक्ष के हरनेवाले और विवेक मार्ग के रोकनेवाले हैं और जो कुछ जगत् जाल की संपूर्ण विभूति है वह सब दुःखरूप है । प्रथम इनका प्रकाश भासता है पर पीछे कलंक को प्राप्त करते हैं । जैसे दीपक प्रथम प्रकाश को दिखाता है और फिर काजल कलंक को देता है, तैसे ही इन्द्रियों के विषय आगमापायी हैं–इनसे शान्ति नहीं होती । अज्ञानी को स्त्री आदिक पदार्थ रमणीयभासते हैं पर ज्ञानवान् की वृत्ति इनकी ओर नहीं फुरती । अज्ञानी को ये स्थिररूप भासते हैं, स्वाद देते और तुष्ट करते हैं पर ज्ञानवान् को असत्य और चलरूप भासते हैं और तुष्टता के कारण नहीं होते । ये विषम भोग हैं विष की नाईं हैं और स्मरणमात्र से भी विषवत् मूर्च्छा करते हैं और सत्यविचार भूल जाते है । इससे तुम इनको त्याग करके अपने स्वभाव में स्थित हो जाओ और ज्ञानवान् की नाईं विचारो । हे रामजी! जब इस जीव को अनात्म में आत्माभिमान होता है तब असंगरूप जगत्जाल भी सत्य हो भासता है । ब्रह्मा को भी वासना के वश से कल्प देह का संयोग होता है । जैसे सुवर्ण का प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है और उसकी झलक कन्धे पर पड़ती है पर कन्धे से सुवर्ण का कुछ संयोग नहीं होता तैसे ही ब्रह्म का संयोग देह से वास्तव कुछ नहीं–कल्पनामात्र देह है । रामजी ने पूछा, हे महामते! आत्मा विरञ्चि के पद को प्राप्त होकर फिर यह सघनरूप जगत् कैसे रचते हैं वह क्रम से कहिए? वशिष्ठजी बोले हे रामजी! जब प्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुए तब जैसे गर्भ से बालक उपजता है तैसे ही उपजकर बारम्बार इस शब्द का उच्चार किया कि ~ब्रह्म'! 'ब्रह्म'! इस कारण उसको ब्रह्मा कहते हैं । फिर संकल्प जालरूप और कल्पित आकार मन हो आया, उस मन ने संकल्पलक्ष्मी फैलाई ।प्रथम संकल्प सेमाया उपजती है, फिर तेज अग्नि के चक्रवत् फुरने लगा और उससे बड़ा आकार हो गया । फिर वह ज्वाला की नाईं, सुवर्ण लता रूप, बड़ी जटा संयुक्त, प्रकाश को धारे और शरीर मनसंयुक्त सूर्यरूप होकर स्थित हुआ और अपने समान आकार बड़े प्रकाशसंयुक्त कल्पा और ज्वाला का मण्डल आकाश के मध्य स्थित हुआ–अग्निरूप और जिसके अग्नि ही अंग हैं । हे महाबुद्धिमन्, रामजी! इस प्रकार तो ब्रह्मा से सूर्य हुए हैं और दूसरी जो तेज किरणें फुरती हैं वे आकाश में तारागण बिम्ब पर आरूढ़ फिरते हैं । फिर ज्यों ज्यों वह संकल्प करता गया त्यों त्यों तत्काल ही सिद्ध होकर भासने लगा । इसी प्रकार आगे जगत् रचा । जिस प्रकार इस सृष्टि में ब्रह्मा रचता है उसी प्रकार और सृष्टि में रचते हैं । प्रथम प्रजापति, फिर कालकलना नक्षत्र और तारागण, फिर देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष नदियाँ, समुद्र, पर्वत सब इसी प्रकार कल्पे और जैसे समुद्र में तरंग कल्पित होते हैं तैसे ही सिद्ध रच के उनके कर्म रचे । वे भी शुभ संकल्परूप है जैसा संकल्प करें वही सिद्ध होकर भासने लगे । इसी प्रकार फिर भूत और तारागण उत्पन्न किये । तब ब्रह्माजी ने वेद उत्पन्न किया और जीवों के नाम,

आचार, कर्मवृत्ति बनाये और जगत् मर्यादा के लिये नीतिरूप स्त्रीको रचा । इसी प्रकार ब्रह्म की माया ब्रह्मारूप से बड़े शरीर धर रही है । आगे सृष्टि का विस्तार है, लोक और लोकपालों के क्रम किये हैं और सुमेरु और पृथ्वी के मध्य दशो दिशा रचकर सुख, मृत्यु, राग, द्वेष प्रकट किये । इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् त्रिगुणरूप ब्रह्माजी ने रचा और जैसे उसने रचा है तैसे ही स्थित है यह जो कुछ सम्पूर्ण दृश्य भासता है वह सब माया–मात्र है । हे रामजी! इस प्रकार जगत् का क्रम हुआ है । संकल्परूप संसार बड़ा स्थित होकर अज्ञान से भासता है । यह तो संकल्प से रचा है, संकल्प के वश से जगत् की क्रिया फैलाता है, संकल्पवश से दैवनीति होकर स्थित हुआ है और सब ब्रह्मा के संकल्प में स्थित है । जब उसका संकल्प निर्वाण होता है तब जगत् भी लय हो जाता है । एक समय ब्रह्माजी पद्मासन धर बैठे थे और विचारने लगे कि यह जगत् जाल मन के फुरने से उपज आता है और नाना प्रकार के विचारसंयुक्त व्यवहार, इन्द्र, उपेन्द्र, मनुष्य, दैत्य, समुद्र, पर्वत, पाताल, पृथ्वी से लेकर सर्व जगत्जाल माया मात्र और बड़ा फैल रहा है इसलिये अब मैं इससे निवृत्त होऊँ । ऐसे विचार उन्होंने अनर्थरूप संकल्प को दूर करके, आदि–अन्तरहित अनादिमत परम ब्रह्माकार आत्मारूप आत्मतत्त्व में मन लय किया और आनन्दरूप आत्मा होकर अपने आप में स्थित होकर निर्मल निरहंकार परमतत्त्व को प्राप्त हुए । जैसे कोई व्यवहार से थका हुआ विश्राम करता है तैसे ही वह अपने आपसे आत्मतत्त्व में स्थित हुए । जैसे समुद्र अक्षोभ होता है तैसे ही वह अक्षोभ हुए और ध्यान में लगे और फिर जब ध्यान से जगे तो जैसे द्रवता से समुद्र से तरंग फुर आवें तैसे ही चित्त के वश से ब्रह्माजी फुरनरूप हो गये तब जगत् को देखके फिर चिन्तन करने लगे कि संसार दुःख, सुख से संयुक्त अनन्त फाँसी से बन्धाय मान है और राग, द्वेष, भय, मोह से दूषित है । हे रामजी! इस प्रकार जीवों को देख के ब्रह्माजी को दया उपजी तो अध्यात्मज्ञान से सम्पन्न वेद उपनिषद और वेदान्त प्रकट किये और बड़े अर्थसंयुक्त नाना प्रकार के शास्त्र रचे । फिर जीवों की मुक्ति के निमित्त पुराण रचे और परमपद जो आपदा से रहित है उसमें स्थित हुआ । जैसे मन्दराचल पर्वत के निकले से क्षीर समुद्र शान्त होता है तैसे ही शान्तरूप होकर स्थित हुआ और फिर उसी प्रकार जाग के जगत् को देख मर्यादा में लगाया फिर कमलपीठ में स्थित होकर आत्म तत्त्व के ध्यानपरायण हुआ । इसी प्रकार जो कुछ अपने शरीर की मर्यादा ब्रह्माजी ने की है उसी प्रकार नीति के संस्कारपर्यन्त क्रीड़ा करते हैं और कुलाल के चक्रवत् नीति के अनुसार विचरते हैं । जैसे ताड़ना और वासना से रहित चक्र फिरता है तैसे ही वह जन्म–मरण से रहित है । उसको शरीर के रखने और त्यागने की कुछ इच्छा नहीं और न कुछ जगत् की स्थिति और न अनस्थिति में इच्छा है । वह किसी पदार्थ के ग्रहण और त्याग की भावना में आसक्त नहीं होता और सबमें समबुद्धि परिपूर्ण समुद्रवत् स्थित है । कभी सब संकल्प से रहित शान्तरूप हो रहते हैं और कभी अपनी इच्छा से जगत् रचते हैं परन्तु उनको जगत् के रचने में कुछ भेद नहीं–सर्व पदार्थों की अवस्था में तुलना है । हे रामजी! यह मैंने तुमसे ब्रह्माजी की स्थिति कही है यह परमदशा और भी किसी देवता को उपजे तो उसको समता जानिये, क्योंकि वह शुद्ध सात्त्विकरूप है । सृष्टि के आदि जो शुद्ध ब्रह्मतत्त्व में चित्तकला फुरी है वही मनकला ब्रह्मारूप होकर स्थित हुई है । जब फिर जगत् के स्थिति क्रम में कलना होती है तब वही ब्रह्मारूप आकाश पवन को आश्रय लेकर औषध और पत्रों में प्रवेश करती है । कहीं देवता–भावको, कहीं मनुष्य भाव को,कहीं पशुपक्षी तिर्यगादिकभाव में प्राप्त होती है और कहीं चन्द्रमा की किरण द्वारा अन्नादिक औषध में प्राप्त होती है । जैसे भाव को लेकर चित्तकला फुरती है तैसा ही भाव शीघ्र उत्पन्न हो आता है । कोई उपजकर संसार के संसर्गवश से उसी जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें अपने स्वरूप का चमत्कार होता है, कोई अनेक जन्म से मुक्त होते हैं और कोई थोड़े जन्म से मुक्त होते हैं । हे रामजी! इस प्रकार जगत्

का क्रम है । कोई प्रत्यक्ष, संकट, कर्म, बन्ध, मोक्षरूप उपजते हैं और कोई मिट जाते हैं । इस प्रकार संसार बन्धमोक्ष से पूर्ण है । जब यह कलना मल नष्ट होता है तब संसार से मुक्त होता है और जब तक कलना मल है तब संसार भासता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे कमलजाव्यवहारो नामाष्टपञ्चाशत्तमस्सर्गः ॥५८॥

अनुक्रम

विचारपुरुषनिर्णय

वशिष्ठजी बोले, हे महाबाहो, रामजी! इस प्रकार ब्रह्माजी ने निर्मल पद में स्थित हो कर सर्ग फैलाया । संसाररूपी कूप में जीव भ्रमते हैं और जीवरूपी टीड़ी तृष्णारूपी रस्सी से बँधे हुए कभी अधः और कभी ऊर्ध्व को जाते हैं । जब वासनारूपी रस्सी टूट पड़ती है तब ब्रह्मतत्त्व से उठे ब्रह्मतत्त्व में एकत्र हो जाते हैं । ब्रह्मसत्ता से जीव उपजते हैं और फिर ब्रह्मसत्ता में ही लय होते हैं । जैसे समुद्र से मेघ जलकण के धूम्र द्वारा उपजते हैं और फिर वर्षा से उसी में प्रवेश करते हैं, तैसे ही जब तन्मात्रा मण्डल से निकलती है तब उसी के साथ जीव एक रूप हो जाते हैं । जैसे मन्दारवृक्ष के पुष्प की सुगन्ध वायु से मिलकर एकरूप हो जाती है तैसे ही चित्तकला जीव तन्मात्रा से मिलकर प्राण नाम पाती है । इस प्रकार प्राणवायु से आदि तन्मात्रा जीवकला को खैंचने लगता है जैसे बड़े प्रचण्ड दैत्य के समूह देवताओं को खैंचे तैसे ही खैंचा हुआ जीव तन्मात्रा से एकरूप हो जाता है । जैसे गन्ध और वायु तन्मय होते हैं तैसे ही वह प्राण तन्मात्रा जीव के शरीर में वीर्य स्थान में जा प्राप्त होता है और जगत् में उपजकर प्राण प्रत्यक्ष होते हैं । कई धूम्रमार्ग से देहवान् के शरीर में प्रवेश करते हैं और कई मेघ में प्रवेश कर बून्द मार्ग से औषध में रसरूप होकर स्थित होते हैं और उसको भोजन करनेवाले के भीतर वीर्य रूप होकर स्थित होते हैं । कई और प्रणवायु द्वारा प्रकट होते हैं और चर स्थावररूप होते हैं, कई पवन मार्ग से धान के खेत में चावलरूप स्थित होते हैं और उनको जीव भोजन करते हैं तो वीर्य में प्राप्त होते हैं और नाना प्रकार के रंग भेद से प्राण धर्म उपजते और कोई उपजनेमात्र से जीव की परम्परा तन्मात्रा से वेष्टित जब तक चन्द्रमा उदय नहीं हुआ आकाश में स्थित होते हैं और जब चन्द्रमा उदय होता है तब उसका रस जो शीतल किरणों और श्वेत क्षीरसमुद्रवत् है उसमें जा प्राप्त होते हैं और उसके अन्तर्गत होकर पात्र औषध में स्थित होते हैं । जैसे कमल पर भँवरे आ स्थित होते हैं तैसे ही औषध में जाकर जीव स्थित होते हैं और फलमें स्वादरूप होकर स्थित होते हैं । जैसे गन्ना रस से पूर्ण होता है तैसे ही जीव से औषध और फल पूर्ण हो जाते हैं । जब वे फल परिपक्व होते हैं तो उनको देहधारी भक्षण करते हैं और उसमें जीव वीर्य और जड़ात्मक रूप होकर स्थित होते हैं । वह सुषुप्ति वासना से वेष्टित हुए गर्भ पिंजरे में पड़ते हैं । हे रामजी! जैसे मृत्तिका में घटादिक,काष्ठ में अग्नि और दूध में घृत सदा रहता है तैसे ही वीर्य में जीव रहता है इस प्रकार परमात्मा महेशरूप से जीव की परम्परा उपजती है । वायु, धूम्र, औषध, प्राण, चन्द्रमा की किरणें इत्यादिक अनेक मार्गों से जीव उपजते हैं जो उपजने से आत्मसत्ता से अप्रमादी रहते हैं और जिनको अपना स्वरूप विस्मरण नहीं होता वे शुद्ध सात्विकी हैं और महाउदार व्यवहारवान् होते हैं और जिनको उपजना विस्मरण हो जाता है और फिर उसी शरीर में आत्मा का साक्षात्कार होता है वह सात्विकीरूप है और जो उपजकर नाना प्रकार के व्यवहार करते हैं और जिनको स्वरूप विस्मरण हो जाता है जन्म की परम्परा पाकर स्वरूप का साक्षात्कार होता है वे राजस सात्विकी कहाते हैं । जिनको अन्त का जन्म आ रहता है उनको जिस प्रकार मोक्ष होता है वह क्रम अब तुमसे कहता हूँ । हे रामजी! उपजनेमात्र से जो अप्रमादी हुए हैं वे शुद्ध सात्त्विकी हैं और वे ही ब्रह्मादिक हैं और जो प्रथम जन्म से बोधवान् हुए हैं और जो कभी किसी जन्म में मोक्ष हुए हैं वे राजसी सात्विकी हैं । इससे भिन्न नाना प्रकार के मूढ़, जड़ और तमसंयुक्त स्थावरादिक अनेक हैं । जिनको आत्मपद प्राप्त हुआ है उनको जो मिलते हैं उनका अन्त जन्म है । ऐसे पुरुष विचारते हैं कि मैं कौन हूँ और यह जगत् क्या है और इस विचार के क्रम से मोक्षभागी होते हैं वे राजस से सात्विकी हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे विचारपुरुषनिर्णयो नाम एकोनषष्टिमस्सर्गः ॥५९॥

अनुक्रम

मोक्षविचार

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो राजस से सात्विकी होते हैं वे पृथ्वी पर महागुणों से शोभायमान होते हैं और सदा उदितरूप रहते हैं । जैसे आकाश में चन्द्रमा रहता है । वे पुरुष खेद नहीं पाते–जैसे आकाश को मलीनता नहीं स्पर्श करती तैसे ही उनको आपदा स्पर्श नहीं करती । जैसे रात्रि के आये से सुवर्ण के कमल नहीं मूँदते, जो कुछ प्रकृति आचार है उसके अनुसार चेष्टा करते हैं और जैसे सूर्य अपने आचार में बिचरता है और आचार नहीं करता, तैसे ही वे सत्यमार्ग में बिचरते हैं और हृदय से पूर्ण शान्त रूप हैं । जैसे चन्द्रमा की कला क्षीण होती है तो भी वह अपनी शीतलता नहीं त्यागता, तैसे ही ज्ञानवान् आपदा के प्राप्त हुए भी मलीनता को नहीं प्राप्त होते । वे सर्वदा काल मैत्री आदिक गुणों से सम्पन्न रहते हैं और सदा उनसे शोभते हैं । समतारूप जो समरस है उससे वे पूर्ण और शान्तरूप हैं और निरन्तर शुद्ध समुद्रवत् अपनी मर्यादा में स्थित रहते हैं । हे रामजी! तुम भी महापुरुषों के मार्ग में सदा चलो और जो मार्ग परमपावन, आपदा से रहित और सात्त्विकी है उसके अनुसार चलो तब आपदा के समुद्र में न डूबोगे । जैसे वे खेद से रहित जगत् में बिचरते हैं तैसे ही बिचरो । जिस क्रम से राजस से सात्विकी मोक्षभागी होता है सो सुनो । प्रथम आर्यभाव को प्राप्त होना अर्थात यथाशास्त्र सद्व्यवहार करना तो उससे अन्तःकरण शुद्ध होता है। उसे आर्यपद को पाकर सन्तों के साथ मिलकर बारम्बार सत्शास्त्रों को विचारना और जो संसार के अनित्य पदार्थ हैं उनमें प्रीति न करना । विरक्तता उपजानी और जो त्रिलोकी के पदार्थों के उपजने विनाशने में सत्यरूप है बारम्बार उसकी भावना करनी और दूसरी भावना शीघ्र ही मिथ्या जानकर त्यागनी । जो कुछ दृश्य जगत् भासता है वह असम्यक् दृश्य है । निष्फल, नाशरूप और व्यर्थ जानकर भावना त्यागनी और सम्यक्ज्ञान को स्मरण करना । सन्तजन और सत्शास्त्र जो ज्ञान के सहायक हैं उनके साथ मिलके विचार करना कि मैं कौन हूँ और जगत् क्या है? भली प्रकार प्रयत्न करके विवेक संयुक्त सदा अध्यात्मशास्त्र का विचार करना और सत्य व्यवहार और सात्त्विकी कर्म करना और अवज्ञा करके मृत्यु को विस्मरण न करना । जो मृत्यु विस्मरण करके संसार कार्य में लग जाता है वह डूबता है, इससे स्मरण करके सन्मार्ग में लगना और जिस पद में महाउदार और शीतलचित्त ज्ञानी पुरुष स्थित है उस पद के मार्ग और दर्शन में सदा इच्छा रखनी । जैसे मोर को मेघ की इच्छा रहती है । हे रामजी! अहंकार जो देह में स्थित है यह देह संसार में उपजी है, इसको भली प्रकार विचार करके नाश करो । यह सांसारिक देह रुधिर माँस, मज्जा आदिक की बनावट है । जितने भूतजात हैं वे सब चेतनरूपी तागे में मोती पिरोये हैं, उन भूतों को त्याग करके चिन्मात्रतत्व को देखो । चेतनसत्ता सत्य, नित्य और विस्तृतरूप है और शुद्ध, सर्वगत और सर्वभाव उसमें है । वह त्रिलोकी का भूषण आश्रयभूत है जो चेतन आकाश सूर्य में है ।वही चेतन पृथ्वी के छिद्र में कीट है जैसे घटाकाश और महाकाश में भेद कुछ नहीं तैसे ही शरीर और चेतन में भेद नहीं । जैसे सब मिरचों में तीक्ष्णता एक ही है तैसे ही सर्वभूतों में चेतनता एक ही अनुस्यूत है–अनुभव से जानता है । उस एक चिन्मात्र में भिन्नता कहाँ से हो?एक सत्यसत्ता जो निरन्तर चिन्मात्र वस्तुरूप है उसमें जन्म मरण आदिक अज्ञान से भासता है, वास्तव में न कोई उपजा है और न मरता है, एक आत्मतत्त्व सदा ज्यों का त्यों स्थित है । और उसमें जगत् विकार आभासमात्र है, न सत्य है न असत्य है । चित्त के फुरने से भासता है और चित्त के शान्त हुए शान्त हो जाता है । जो जगत् को सत्य मानिये तो अनादि हुआ इससे भी शोक किसी का

नहीं बनता । और जो जगत् असत्य मानिये तो भी शोक का स्थान नहीं बनता । इससे दृढ़ विचार करके स्थित हो और शोक को त्यागो । तुमको न जन्म है और न मरण है–आकाशवत् निर्मल सम शान्तरूप हो जाओ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे स्थितिप्रकरणे मोक्षविचारो नाम षष्टितमस्सर्गः ॥६०॥

अनुक्रम

मोक्षोपायवर्णन

वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! जो धैर्यवान् पुरुष बुद्धिमान हैं वे सत्शास्त्र को विचारें, सन्तजनों का संग करके उनका आचार ग्रहण करें और जो दुःख की नाशकर्त्ता श्रेष्ठ ज्ञानदृष्टि है उसको यत्न करके अंगीकार करें तब सज्जनता प्राप्त होगी । सन्तजन जो विरक्तात्मा हैं उनसे मिलकर जब सत्शास्त्र को विचारें तब परमपद मिलता है । हे रामजी! जो पुरुष सत्शास्त्र का विचारनेवाला है और सज्जनों का संग तथा वैराग्य अभ्यास आदरसंयुक्त करता है वह तुम्हारी नाईं विज्ञान का पात्र है । तुम तो उदारात्मा हो और धैर्यवान् के जो गुण शुभाचार हैं उनके समुद्र हो निर्दुःख होकर स्थित हो । अब राजसी से सात्त्विकी और मनन शील हुए हो फिर ऐसे दग्धरूप संसार में दुःख के पात्र न होंगे । यह तुम्हारा अन्त का जन्म है जो अपने स्वभाव की ओर धावते हो अन्तर्मुख यत्न करते हो, निर्मल दृष्टि तुमको प्रकट हुई है और आत्म वस्तु को जानते हो जैसे सूर्य के प्रकाश से यथार्थ वस्तु का ज्ञान होता है । अब मेरे वचनों की पंक्ति से सर्वमल दूर हो जावेंगे–जैसे अग्नि से धातु का मल जल जाता है तैसे ही तुम्हारा मल जल जावेगा और निर्मलता से शोभायमान होगे जैसे मेघ के नष्ट हुए शरत्काल का आकाश शोभता है तैसे ही संसार में भावना से मुक्त होकर चिन्ता से रहित निर्मलभावसे शोभोगे । अहं, ममादि कल्पना से मुक्त हुए ही मुक्त हैं इसमें कुछ संशय नहीं । हे रामजी! तुम्हारा जो यह अनुभव और उत्तम व्यवहार है उसके अनुसार विचरोगे तो तुम अशोक पद पावोगे । और जो कोई इस व्यवहार को बर्तेगा वह भी संसारसमुद्र को अनुभवरूपी बेड़े से तर जावेगा । तुम्हारा तुल्य जिसकी मति होगी वह समदर्शी जन ज्ञानदृष्टि योग्य है । जैसे सर्व कान्तिमान् सुन्दरता का पात्र पूर्णमासी का चन्द्रमा होता है । तुम तो अशोकदशा को प्राप्त हुए हो और यथाप्राप्ति में वर्त्तते हो । जब तक देह है तब तक राग द्वेष से रहित स्थिरबुद्धि रहो और यथाशास्त्र जो उचित आचार हैं उन्हें बर्ता करो पर हृदय में सर्वकल्पना से रहित शीतल चित्त हो–जैसे पूर्णमासी का चन्द्रमा शीतल होता है । हे रामजी! इन सात्त्विक और राजस से–सात्त्विक से भिन्न जो तामसी जीव हैं उनका विचार यहाँ न करना, ये सियार हैं और मद्यादिक के पीनेवाले हैं, उनके विचार से क्या प्रयोजन है? जो मैंने तुमसे सात्त्विकी जन कहे हैं उनके संग से बुद्धि अन्त के जन्म की होती है और जो तामसी हैं वह भी उनको सेवे तो उनकी बुद्धि भी उदार हो जाती है । जिस जिस जाति में जीव उपजता हे उस जाति के गुण से शीघ्र ही संयुक्त हो जाता है । पूर्व जो कोई भाव होता है वह जाति के वश से वहाँ जाता रहता और जिस जाति में वह जन्मता है उसके गुणों को जीतने का पुरुषार्थ करता है, तब यत्न से पूर्व के स्वभाव को जीत लेता है । जैसे धैर्यवान् शूरमा शत्रु को जीत लेता है । जो पूर्व संस्कार मलीन है तो धैर्य करके मलीन बुद्धि का उद्धार करे– जैसे मुग्ध हुआ पशु गढ़े में फँस जावे और उसको काढ़ लेवे तैसे ही बुद्धि को मलीन संस्कार से काढ़ि ले । हे रामजी! जो तामस–राजसी जाति है उसको भी जन्म और कर्म के संस्कारवश से सात्त्विक प्राप्त होता है और वह भी अपने विचार द्वारा सात्त्विक जाति को प्राप्त होता है । पुरुष के भीतर अनुभवरूपी चिन्तामणि है उसमें जो कुछ निवे दन करता है वही रूप हो जाता है । इससे पुरुषार्थ करके अपना उद्धार करो पुरुषप्रयत्न से पुरुष बड़े गुणों से संपन्न हो मोक्ष पाता है और उसका अन्त का जन्म होता है, फिर जन्म नहीं पाता और अशुभ जाति के कर्म निवृत्त हो जाते हैं । ऐसा पदार्थ पृथ्वी, आकाश और देवलोक में कोई नहीं जो यथाशास्त्र प्रयत्न करके न पाइये । हे रामजी! तुम तो बड़े गुणों से संपन्न हो और धैर्य उत्तम वैराग्य और दृढ़ बुद्धि से संयुक्त हो और उसके पाने को धर्मबुद्धि से वीतशोक हो । तुम्हारे क्रम को जो कोई जीव ग्रहण करेगा वह मूढ़ता से रहित होकर अशोक पद को प्राप्त होगा । अब तुम्हारा अन्त का जन्म है और बड़े विवेक से संयुक्त हो

तुम्हारी बुद्धि में शान्ति आदि गुण फैल गये और उनसे तुम शोभते हो। सात्त्विक गुण से सबमें रम रहे हो और संसार की बुद्धि, मोह और चिन्ता तुमको मिथ्या है–तुम अपने स्वस्थस्वरूप में स्थित हो।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे महारामायणे स्थितिप्रकरणे मोक्षोपायवर्णनन्नामैक षष्टितमस्सर्गः ॥६१॥

अनुक्रम